(१) प्रथम विभावना—जहां बिना कारण के कार्य हो जाय।

(२) द्वितीय विभावना—जहां अपर्याप्त या अपूर्ण कारण से कार्य हो जाय।

(३) तृतीय विभावना—जहां प्रतिबन्ध होने पर भी कार्य हो जाय।

(४) चतुर्थ विभावना—जहां कार्य की उत्पत्ति ऐसे अयोग्य कारण से हो जो उस कार्य का कारण बनने की क्षमता नहीं रखता।

(५) पञ्चम विभावना—जहां विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

(६) षष्ठ विभावना—जहां उलट होकर कार्य से कारण की उत्पत्ति का कथन किया जाय।

उदाहरण

प्रथम विभावना

जहां बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति हो।

(१) लाज भरी अँखियां विहँसी बलि, बोल कहें बिन उत्तर दीनौं।

यहां 'उत्तर दीनों' यह कार्य है। इसका कारण है 'बोलना'। बोल कर ही उत्तर दिया जाता है। पर यहां 'बोल कहें बिन' से कारण का निषेध करके कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति कथन की है।

(२) साहि-तनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि-सैन॥

यहां 'दारिद हरै' कार्य है। इसका कारण है प्रसन्न होना। पर यहां 'अनरीझे' कह कर कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति कही है। इसी प्रकार 'अरि-सैन हरै' कार्य है। इसका कारण है

'खीझना'। पर 'अनखीझे' कहने से कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति कही है। अतः यहां प्रथम विभावना है।

द्वितीय विभावना

जहां अपर्याप्त कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

(१) काम कुसुम-धनु-सायक लीन्हें।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें॥

यहां 'सकल भुवन अपने बस कीन्हें' कार्य है। इसका कारण होना चाहिये—कोई बड़ा पक्का और दृढ़ धनुष। पर काम ने फूलों के धनुष-बाण से ही सब को वश में कर लिया। फूलों के धनुष-बाण सकल भुवन को वश करने में अपर्याप्त या अपूर्ण कारण हैं।

(२) एक नाम नंद-नंद को, हरत हजारन पाप।

यहां हजारों पापों को नष्ट करने (कार्य) के लिये नंद-नंदन का एक नाम (कारण) अपर्याप्त सा दीखता है।

तृतीय विभावना

जहां प्रतिबन्ध होने पर भी कार्य हो जाय।

(१) तुव प्रताप सावंत नृप, तेज तरल दरसात।
सेवत अरि तरु छाँह घन, तऊ तपत दिन रात।

सावन्तसिंह नृप का तेज (घरबार छोड़ कर भागे हुए और वृक्षों की छाया में बैठे हुए शत्रुओं को भी दिन रात तपाता रहता है। तेज का काम है तपाना। तपाना कार्य है और तेज कारण है। पर वृक्षों की घनी छाया में तेज नहीं तपा सकता। कारण को कार्य उत्पन्न करने में 'तरु छाँह' प्रतिबन्ध है। पर प्रतिबन्ध होने पर भी 'तपाना' रूप कार्य की उत्पत्ति हो गई।

(२) विपदा हू में होय के, पर दुख हरत महान।

महापुरुषों का काम है पराया दुःख हरना। पर इस में प्रतिबन्ध है कि वे स्वयं विपत्ति में हैं। यहां प्रतिबन्ध के होते हुए भी कार्य (पर दुःख हरण) की उत्पत्ति कथन की गई है।

चतुर्थ विभावना

जहां अयोग्य कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

(१) फूली चम्पक बेलि ते, झरत चमेली फूल।

यहां 'चमेली फूल का झड़ना' कार्य है। इस का कारण हो सकता है चमेली की बेल। पर यहां कवि ने चम्पक बेल से चमेली फूल का झड़ना कथन किया है। यहां ऐसे कारण का कथन किया गया है जिस में उस कार्य के सम्पादन की योग्यता नहीं है।

(२) चंप लता से उड़ि रही, गहव गुलाब सुबास।
रैन अमावस से लखौ, प्रगट्यो परत प्रकास॥

यहां 'गुलाब की सुगन्धि का उड़ना' और 'प्रकाश का प्रकट होना' कार्य हैं। इनके कारण बताये गये है—'चंप लता' और 'अमावस की रात'। इन कारणों में उक्त कार्यों के सम्पादन की क्षमता नहीं है, पर कवि ने कथन कर दी है।

पञ्चम विभावना

जहां विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

(१) सीतल चन्दन चंद हूं, लगे जरावन गात।

यहां 'गात जलाना' कार्य है। उसका कारण हो सकता है

आग। पर यहां कथन किया गया है—'चन्दन' और 'चांद', जो शीतल हैं और 'जलाने' के कार्य के विरोधी कारण हैं।

(२) तेरा होना उदय व्रज में, तो अँधेरा करेगा।

यहां 'अंधेरा' कार्य है, उसका कारण होना चाहिये सूर्यास्त। पर यहां विरुद्ध कारण—'सूर्य का उदय होना' बताया गया है।

षष्ठ विभावना

जहां कार्य से कारण की उत्पत्ति कथन की जाय।

(१) उपज्यौ तौ मुख-इन्दु तें, प्रेम-पयोधि अपार॥

चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न हुआ है। समुद्र कारण है औ चन्द्र कार्य है। पर यहां कवि कहता है कि—'तेरे मुखरूपी चन्द्र से प्रेम रूपी समुद्र उत्पन्न हुआ है'। इस से यहां कार्य (चन्द्र) से कारण (समुद्र) की उत्पत्ति बताई गई है।

(२) तुव कृपान धुव धूम तें, भयो प्रताप कृसानु॥

अग्नि से धुआं पैदा होता है। अग्नि कारण है और धू कार्य है। पर यहां 'कृपान धुव धूम' से प्रताप की अग्नि का पै होना लिखा है। कार्य (धूम) से कारण (अग्नि) की उत्पत्ति कथन की है।

द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम विभावना में भेद

द्वितीय विभावना में अपर्याप्त या अपूर्ण कारण से का की उत्पत्ति होती है। वह कारण वास्तव में उस कार्य का कारण होता है, पर अपूर्ण होता है।

चतुर्थ विभावना में अयोग्य कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। वहां जो कारण होता है, वह वास्तव में उस कार्य

कारण नहीं होता। अन्य कार्य के कारण से अन्य कार्य की उत्पत्ति कथन की जाती है।

पञ्चम विभावना में विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। वहां जो कारण कथन किया जाता है, वह वस्तुत: उस कार्य का विरोधी होता है। चतुर्थ में विरोधी नहीं होता, अन्य होता है।

विभावना और विरोधाभास में भेद

विभावना में कारण के बिना, या अपूर्ण या अयोग्य या विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। इस में 'कारण का विरोध' मूल है, पर विरोधाभास में दो पदार्थ परस्पर विरुद्ध से दीखते हैं, पर वास्तव में विरुद्ध होते नहीं।

विशेषोक्ति

जहां कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न हो, वहां विशेषोक्ति अलङ्कार होता है❀।

विशेषोक्ति का अर्थ है—किसी विशेष बात का कहना। यह साधारण नियम है कि कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। जहां कारण-सामग्री विद्यमान होगी, वहां वह कार्य को अवश्य पैदा करेगी। आग की अंगीठी (कारण) को पास रखने से गरमी (कार्य) अपने आप आजायगी। तो इस साधारण नियम के विरुद्ध जहां कारण के होते हुए भी कार्य पैदा न हो, तो वहां कहा जाता है कि यहां कोई खास बात हैं। यदि आग की अंगीठी रखने से भी गरमी न आये, तो अवश्य कोई विशेष बात होती है। बस यही इस अलङ्कार का विषय है।

❀ विशेषोक्ति जब हेतु सों, कारज उपजै नाहिं। (भाषाभूषण)

विशेषोक्ति में दो बातें आवश्यक है—

(१) आवश्यक और अपेक्षित कारण की विद्यमानता।

(२) कारण की विद्यमानता में भी कार्य का न होना।

उदाहरण

(१) दौलत इन्द्र समान बढ़ी, पै खुमान के नेकु गुमान न आयो

यहां दौलत का बढ़ना कारण है और गुमान (अहङ्कार) का होना उसका कार्य है। धन से अभिमान बढ़ता ही है। पर शिवाजी के पास इन्द्र के तुल्य संपत्ति होने पर भी गर्व का नाम नहीं। इससे कारण (दौलत) के विद्यमान होने पर भी कार्य (गुमान) का अभाव बताया गया है।

(२) नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥

प्यास बुझाने का कारण पानी है। नेत्र पानी से भरे रहने पर भी (दर्शन के) प्यासे ही रहते हैं। यहां भी कारण (नीर) के होने पर भी कार्य (प्यास शान्ति) का अभाव कथन किया गया है।

विशेषोक्ति और विभावना में भेद

विशेषोक्ति वास्तव में विभावना का उलट है। विभावना में कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति होती है। विशेषोक्ति में कारण के होने पर भी कार्य नहीं होता। विभावना में कार्य होता है, कारण नहीं। विशेषोक्ति में कारण होता है, कार्य नहीं।

असंगति

जहां कारण और कार्य परस्पर असंगत (विरुद्ध) से प्रतीत हों, वहां असंगति अलंकार होता है❀।

❀ कारज कारन में जहां, लखिये रीति विरुद्ध।
ताहि असंगति कहत हैं, जिनकी मति अति सुद्ध ॥ (बिहारी)

असंगति के अर्थ हैं—संगत न होना, बेमेल होना, स्वाभाविक नियम के विरुद्ध होना। असङ्गति में—

कारण और कार्य दोनों का कथन होता है। पर उनका सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं होता। कुछ विपरीत, बेमेल और उलट-फेर से होता है। इसी से उस में रमणीयता आ जाती है। इसके तीन भेद हैं—

(१) प्रथम असङ्गति—जहां कारण और कार्य भिन्न २ स्थानों में होते हैं।

(२) द्वितीय असङ्गति—जहां एक स्थान का कार्य दूसरे स्थान पर कर दिया जाय।

(३) तृतीय असङ्गति—जहां प्रयत्न किया जाय एक कार्य का, पर हो जाय दूसरा।

उदाहरण

प्रथम असंगति

जहां कारण और स्थान पर हो और कार्य और स्थान पर होजाय।

(१) भारतीय सूली चढ़त, उतरत घाट कृपान।
कांपत पै सरकार हिय, देखो अचरज महान्॥

यहां 'हृदय का कांपना' कार्य है। उसका कारण है—सूली पर चढ़ना और तलवार के घाट उतरना। जो सूली पर चढ़ता है, उसका हृदय कांपता है। यह स्वाभाविक है। पर यहां सूली चढ़ने वाले हैं—भारतीय और हृदय कांपता है सरकार का। कारण अन्यत्र है और कार्य अन्यत्र। इस से यहां प्रथम असङ्गति है।

(२) लगालगी लोचन करैं, मन नाहक बँधि जाय।

कृष्ण को देखते तो नेत्र हैं, पर बँध जाता है 'मन'। यहां कारण (देखना) अन्यत्र है, और कार्य (बन्ध जाना) अन्यत्र।

द्वितीय असंगति

जहां एक स्थान का कार्य दूसरे स्थान पर कर दिया जाय।

(१) पांयन की सुधि भूलि गई,
अकुलाय महावर आंखिन दीन्हों ॥

यहां व्याकुलता में महावर को पाँओं के स्थान आंखों में दे दिया।

(२) बंसी धुनि सुनि व्रजबधू चली बिसारि बिचार।
भुजभूषन पहिरे पगनि, भुजन लपेटे हार ॥

यहां जो भूषण भुज में पहिरने चाहियें, वे पैरों में पहिर लिये गये और हारों (कण्ठभूषणों) को भुजाओं में लपेट लिया गया। यहां एक स्थान का कार्य दूसरे स्थान पर किया गया।

तृतीय असंगति

जहां प्रयत्न किया जाय एक कार्य का, पर हो जाय दूसरा।

(१) मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीनों तुम अवतार।
उलटो मोहन रूप धरि, मोहीं सब व्रजनार ॥

संसार का मोह मिटाने के लिये कृष्ण ने अवतार लिया। तो यह प्रथम कार्य का प्रयत्न हुआ। पर उसी कृष्ण ने सब व्रज गोपियों को मोह लिया—यह उसके विरुद्ध कार्य हो गया। मोह के नाश के लिये अवतार लेने का उद्योग करके उसके विरुद्ध गोपियों को मोह लिया। इससे यहां तृतीय असंगति है।

(२) आये जीवन दैन घन, लगे सुजीवन लैन ॥

बादल जीवन (जल) देने आता है, पर वही (कृष्ण के विरह में) जीवन लेने लग पड़ा है।

यहां बादल का उद्योग या प्रथम कार्य है—"जीवन दान"। पर वह विरुद्ध कार्य करने लग पड़ा—'जीवनदान' के स्थान में वह 'जीवन लेने लगा' है। इस से यहां तृतीय असङ्गति है।

---

(३) न्यायमूलक अर्थालङ्कार

काव्यलिङ्ग

जहां समर्थन के योग्य किसी बात का युक्ति से समर्थन किया जाय, वहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है*।

काव्यलिङ्ग में चार बातें आवश्यक हैं—

(१) समर्थन के योग्य कोई बात कही जाय।

(२) वह समर्थनीय बात बिना समर्थन के साकांक्ष रहे।

(३) उस का हेतु, तर्क या युक्ति से समर्थन किया जाय।

(४) पर वह समर्थन ऐसी युक्ति से किया जाय, कि वह 'पृथक् हेतु' न दिखाई देकर वाक्य या पद का ही भाग बन जाय। अर्थात् 'इस कारण से', 'इसलिये', 'चूंकि' आदि हेतुबोधक शब्द का कथन उस में न हो। हेतु कथित न हो, प्रतीत हो।

---

* अर्थ समर्थहिं जोग जो, करै समर्थन तासु।
काव्यलिङ्ग तासों कहत, जिन के सुमति प्रकास ॥ (पद्माभरण)

उदाहरण

(१) कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
वहि खाये बौराय जग, यहि पाये बौराय॥

सोने में धत्तूरे से सौगुनी मादक शक्ति अधिक होती है। यह समर्थनीय बात है। अर्थात् इसे किसी युक्ति या प्रमाण से पुष्ट करना आवश्यक है। बिना पुष्टि के इसे कोई न मानेगा इस से यह साकांक्ष है। अब उत्तरार्ध में इसका हेतु दिया गया है कि—'धत्तूरे को तो खाने से मद चढ़ता है, पर सोने को प्राप्त कर लेने मात्र से मद चढ़ जाता है'। इस हेतु के देने से ऊपर की समर्थनीय बात की पुष्टि हो गई और वह अब निराकांक्ष भी हो गई। यह हेतु 'कारण कि' 'क्योंकि' आदि शब्द देकर नहीं कहा गया। यहां हेतु गम्य है और वाक्य का ही अङ्ग है। इस से यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

(२) सो नर कस दसकंध, बालि बध्यौ जेहि एक सर।

अंगद कहता है,—हे रावण राम नर नहीं है। यहां यह बात समर्थन के योग्य है। बिना समर्थन के यह साकांक्ष भी है। इससे यह 'समर्थनीय' है। आगे इसकी पुष्टि की गई है—'जिस ने बालि को एक बाण से मार दिया'। यह पहली बात की पुष्टि करता है कि राम मनुष्य नहीं है जिस ने बालि जैसा योद्धा एक बाण से मार दिया। अब यह हेतु वाक्य का ही अङ्ग है। और गम्य है। वाच्य नहीं है। इससे यहां भी काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास में भेद

अर्थान्तरन्यास में एक बात विशेष होती है दूसरी सामान्य। दोनों एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखतीं।

काव्यलिङ्ग में एक बात ऐसी होती है जो समर्थन की अपेक्षा रखती है। बिना समर्थन के वह साकांक्ष रहती है।

अर्थान्तरन्यास में विशेष बात सामान्य की या सामान्य बात विशेष की पुष्टि करती है।

काव्यलिङ्ग में समर्थनीय बात की पुष्टि की जाती है। इसमें विशेष-सामान्य कुछ नहीं होता। यहां समर्थन गम्य होता है[1]।

परिवृत्ति

जहां एक वस्तु देकर दूसरी के लेने का चमत्कारपूर्ण वर्णन हो, वहां परिवृत्ति अलंकार होता है ❀।

परिवृत्ति का अर्थ है—'विनिमय' अर्थात् अदला-बदला करना। जब एक वस्तु के बदले में दूसरी मिले, तो यह अलङ्कार होता है।

उदाहरण

(१) मन-मानिक दीन्हौं तुम्हैं, लीन्हीं विरह-बलाय ॥

यहां मन देकर विरह बदले में मिला।

---

१ कई आचार्य काव्यलिंग को पृथक् अलंकार नहीं मानते। संस्कृत-साहित्य में इसके मानने न मानने पर बड़ा मतभेद और वाद-विवाद है। हिन्दी में भी मतिराम आदि ने इसका वर्णन नहीं किया। श्री पण्डितराज जगन्नाथ जी इस विषय में लिखते हैं—अत्र वदन्ति काव्यलिंगं नालंकारः,—वैचित्र्यात्मनो विच्छित्तिविशेषस्याभावात्।...... तस्मात् निर्हेतुरूपदोषाभावः काव्यलिंगम्' इत्यपि वदन्ति। (रसगंगाधर)

❀ कहूँ अधिक कहूँ न्यून को, लैवा-दैवो होय।
परिवृत्त यों द्वै विधि कहत, कवि पण्डित सब कोय ॥ (बिहारी)

(२) मो मन मेरी बुद्धि लै, करि हर को अनुकूल ।
लै त्रिलोक की साहिबी, दै धतूर के फूल ॥

यहां शिव को धतूरे के फूल देकर, तीन लोक का आधिपत्य बदले में मिलने का कथन है ।

परिसंख्या

जहां किसी वस्तु का अन्य स्थान से निषेध करके एक ही स्थान में रहने का वर्णन किया जाय, वहां परिसंख्या अलङ्कार होता है ❀ ।

उदाहरण

(१) केसन ही में कुटिलता, संचारिन में संक ।
लखौ राम के राज्य में, इक ससि माहिँ कलङ्क ॥

राम के राज्य में कुटिलता (टेढ़ापन) केवल केशों में है, अर्थात् मनुष्यों में कुटिलता (धोखाबाजी) नहीं है । शंका (डर,भय) केवल संचारीभावों में है', (प्रजागणों में नहीं), और कलङ्क (काला धब्बा) केवल चन्द्रमा में है । प्रजागणों में कलङ्क (दूषण) नहीं हैं ।

यहां कुटिलता, शंका और कलंक को अन्य स्थानों से निषेध करके केवल 'केश', 'संचारीभाव' और 'चन्द्र' में स्थापित किया गया है । इस से यहां परिसंख्या अलंकार है ।

❀ और ठौर ते मटि कछु, बात एक ही ठौर ।
बरनत परिसंख्या कहत, कवि कोविद सिर मौर ॥ (मतिराम)

(२) पावस ही में धनुष अब, नदी तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग, नौ रस ही में वीर॥

अब तो धनुष (इन्द्रधनुष) बरसात ही में दीखता है (वैसे लोगों के हाथों में अब धनुष नहीं दीखता)। अब तीर नदी तीर ही हैं (बाण किसी के हाथ में नहीं)। अब रोने से ही नेत्र लाल होते हैं—(क्रोध से नेत्रों का लाल होना नहीं दिखाई देता)। अब वीर रस तो केवल नौ रसों की गणना में ही है। (मनुष्यों में अब वीर पुरुष नहीं रहे)। यहां धनुष, तीर, लाल दृग और वीर आदि को अन्यत्र से निषेध करके केवल एक स्थान पर ही स्थापित किया गया है। इस से यहां परिसंख्या है।

कहीं कहीं यह निषेध 'न', 'नहीं' आदि शब्दों से भी किया जाता है जैसे—विद्या ही मनुष्य का भूषण है, सोने के गहने नहीं।

कहीं २ पर प्रश्न की शैली पर भी निषेध सूचित होता है—

सेव्य कहा ? तट सुरसरित, कहा ध्येय ? हरि पाद।
करन उचित कह ? धर्म नित, चित तजि सकल विषाद॥

सेव्य क्या है ?—गङ्गा का तट (अर्थात् और कुछ नहीं)
ध्येय क्या है ?—हरि के चरण (,, ,,)
कर्तव्य क्या है ?—धर्म (,, ,,)

इस प्रकार यहां प्रश्न करके उत्तर के द्वारा सेव्य आदिकों को अन्यत्र से निषेध करके एकत्र गङ्गा तट आदि में स्थापित किया गया है। इस से यहां भी परिसंख्या है।

काव्यार्थापत्ति

जहां 'उसका तो कहना ही क्या है' इत्यादि पदों से किसी

वस्तु की सिद्धि का वर्णन हो, वहां काव्यार्थापत्ति अलङ्कार होता है* ।

अर्थापत्ति का अर्थ है—जो बात 'अर्थ से सिद्ध हो' । जैसे हम कहें—'चोर तो मेरा कोट ही चुरा कर लेगया' इस से यह सिद्ध है कि कोट के जेब में जो रुपये थे वे भी ले गया—जब कोट ही ले गया तो रुपयों का तो कहना ही क्या है । इत्यादि प्रकार से जहां कुछ रमणीय वर्णन हो, उसे काव्यार्थापत्ति कहते हैं ।

उदाहरण

(१) बिना सिखाई चतुरई, तिरियन की विख्यात ।
पसु-पंछिन हूं में लखी, मनुषन की का बात ॥

यहां दुष्यन्त कहता है—'पशु-पक्षियों की स्त्रियां ही बड़ी चतुर होती हैं, तो मनुष्यों की स्त्रियों की तो बात ही क्या है । इस से यहां काव्यार्थापत्ति है ।

(२) दिल्ली दलमली तो तिहारी कहा चली है ।

शिवा जी ने दिल्ली को दल-मल दिया, तो तुम्हारी तो बात ही क्या है । यहां भी काव्यार्थापत्ति है ।

प्रतीप

जहां प्रसिद्ध उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बना दिया जाय, वहां प्रतीप अलंकार होता है† ।

---

* यह कियौ तौ यह कहा, इह विधि वरनन होय ।
काव्यार्थापत्ति ताहि कौं, कहत सयाने लोय ॥ (सा० सा०)

† जहां प्रसिद्ध उपवर्न कौ, पलटि कहत उपमेय ।
बरनत तहां प्रतीप हैं, कविजन जगत अजेय ॥ (ललितललाम)

प्रतीप का अर्थ है—विपरीत, उल्टा। प्रतीप में लोक प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना दिया जाता है। सब कोई जानते हैं कि 'चन्द्रमा' उपमान है। सुन्दर मुख को चन्दमा से उपमा दी जाती है। पर इस को उलट कर यदि यह कहें कि 'चन्द्रमा मुख के समान है' तो यह प्रतीप हो जायगा।

प्रतीप के भेद

प्रतीप के पांच भेद हैं—

(१) प्रथम प्रतीप—जहां प्रसिद्ध उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान बना दिया जाय।

(२) द्वितीय प्रतीप—जहां प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना कर असल उपमेय का अनादर प्रकट किया जाय।

(३) तृतीय प्रतीप—जहां प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना कर (सत्य उपमेय के द्वारा) उस (सत्य उपमान) का अनादर कथन किया जाय।

(४) चतुर्थ प्रतीप—जहां उपमान में उपमेय की समता दिखा कर फिर उसे (समता को) असत्य बताया जाय।

(५) पञ्चम प्रतीप—जहां उपमेय के सामने उपमान व्यर्थ और निष्फल बताया जाय।

उदाहरण

प्रथम प्रतीप

जहां उपमान को उपमेय और उपमेय को उपमान कथन किया जाय।

(१) तुव प्रताप सम सूर्य है, जस-सम सोहत चंद।
कर सम कहियतु कल्पतरु, जय जय श्री रघुनन्द॥

यहां सूर्य, प्रताप के समान, चन्द्रमा, यश के समान और कल्पतरु, हाथ के समान (दानी) कथन किये गये हैं। यहां सूर्य उपमेय है और प्रताप उपमान है। पर वास्तव में प्रताप उपमेय है। और सूर्य उपमान होता है। यहां 'चन्द्रमा' उपमेय है और 'यश' उपमान है। पर वास्तव में यश उपमेय है और चन्द्र उपमान होता है। इसी प्रकार कल्पतरु उपमेय है और हाथ उपमान है पर वास्तव में हाथ उपमेय है और 'कल्पतरु' उपमान होता है।

इस प्रकार यहां प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय और उपमेयों को उपमान बताया गया है। इस से यहां प्रथम प्रतीप है।

(२) मुख सौं शोभित सरद शशि, कमल सुलोचन सेय।

यहां प्रसिद्ध उपमान शशि और कमल उपमेय बना दिये गये हैं और मुख और नेत्र उपमेयों को उपमान मान लिया गया है।

द्वितीय प्रतीप

जहां उपमान को उपमेय बना कर असल उपमेय का अनादर कथन किया जाय।

प्रकृति माधुरी पर कहा, गर्व तोहि कसमीर।
नन्दन बन तो सम अहै, सोहत परम गंभीर॥

यहां प्रसिद्ध उपमान नन्दन वन को उपमेय बना दिया है। और असल उपमेय 'कसमीर' का उसके द्वारा अनादर दिखाया गया है। इससे यहां द्वितीय प्रतीप है।

तृतीय प्रतीप

जहां उपमान को उपमेय बना कर उसका असल उपमेय के द्वारा अनादर किया जाय। (यह द्वितीय प्रतीप का उलट है।)।

(१) पाहन, जिय जनि गर्व कर, हौं ही कठिन अपार।
चित दुर्जन के देखिये, तो से लाख हजार ॥

यहां पाहन (प्रसिद्ध उपमान) को उपमेय मान कर संबोधित किया गया है। फिर दुर्जन-चित्त (उपमेय) के द्वारा उसका अनादर किया गया है।

(२) सुछवि गरव मति करु कमल, यों बनितन के नैन।

यहां प्रसिद्ध उपमान 'कमल' का उपमेय 'नेत्रों' के द्वारा अपमान किया है।

चतुर्थ प्रतीप

जहां उपमान में उपमेय की समता दिखा कर फिर उसे असत्य बताया जाय।

(१) तुव मुख के सम ह्वै सकत, कहा बिचारो चंद।

जहां मुख को चन्द्र के समान बता कर फिर उस को अयोग्य कथन किया गया है।

प्राचि दिसि ससि उगेउ सुहावा, सिय-मुख सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं, सीय वदन सम हिमकर नाहीं ॥

यहां शशि को सीता के मुख के समान कहने से प्रसिद्ध उपमान (शशि) को उपमेय बना दिया और सीता मुख (उपमेय) को उपमान कर दिया। इन दोनों की समता को दिखाकर फिर विचार करने पर कहा—'सीय वदन सम हिमकर नाहीं'—चन्द्र सीता के मुख के समान नहीं है।

पञ्चम प्रतीप

जहां उपमान व्यर्थ और निष्फल कथन किया जाय।

(१) कल्पवृक्ष केहि काम को, जब हैं नृप जसवन्त।

यहां जसवन्त नृप की विद्यमानता में कल्पवृक्ष (उपमान) का होना निष्फल और व्यर्थ बताया गया है। (क्योंकि जसवन्त नृप इतने दानी हैं कि अब लोगों को कल्पवृक्ष की आवश्यकता नहीं रही)।

(२) अमिय झरत चहुँ ओर सों, नयन ताप हरि लेत।
राधा जू को बदन अस, चंद उदय केहि हेत॥

यहां अमृत बरसाना, नेत्र-ताप-हरण आदि कार्य उपमेय (राधा जू को बदन) कर रहा है। फिर उपमान (चन्द्र) की आवश्यकता ही कुछ नहीं। इस से उपमेय (राधा-मुख) की विद्यमानता में उपमान (चन्द्र) का होना निष्फल कथन किया गया है। इससे यहां पञ्चम प्रतीप है।

---

(४) शृंखलाबन्धमूलक अर्थालङ्कार

एकावली

जहां पूर्व पूर्व विशेष्य की उत्तर उत्तर विशेषण के द्वारा स्थापना या निषेध किया जाय, वहां एकावली अलङ्कार होता है*।

एकावली में पूर्व कथित वस्तु विशेष्य होती है और उत्तर

---

* एक अर्थ लै छाड़िये, और अर्थ लै ताहि।
अर्थपांति इमि कहत हैं, एकावली सराहि॥ (ललित ललाम)

कथित उसका विशेषण। फिर वह विशेषण उस से अगली बात का विशेष्य हो जाता है। इस प्रकार विशेषण, विशेष्य बनते हुए चले जाते हैं और उनकी एक शृंखला सी बन जाती है।

विशेषण का अर्थ यहां 'व्याकरण परिभाषा' का विशेषण नहीं। 'पदार्थ को जो विशिष्ट स्वरूप दे दे—जिस से उसकी कुछ विशेषता प्रगट हो' उसे विशेषण कहते हैं। और विशेषण जिस पदार्थ की विशेषता प्रकट करे, उस पदार्थ को 'विशेष्य' कहते हैं।

एकावली में ये विशेषण अपने अपने विशेष्यों की या तो स्थापना करते हैं या निषेध। स्थापना का अर्थ है—ग्रहण, स्वीकार और निषेध का अर्थ है—प्रतिषेध, इन्कार।

इस आधार पर एकावली दो प्रकार की है—

(१) जहां विशेषण के द्वारा विशेष्य की स्थापना हो।

(२) जहां विशेषण के द्वारा विशेष्य का निषेध हो।

उदाहरण

(१) विशेषण के द्वारा विशेष्य की स्थापना—

(१) मानुष वही जो हो गुनी, गुनी जु कोविद रूप।
कोविद जो कबि पद लहै, कबि जो उक्ति अनूप॥

यहां 'मानुष' विशेष्य है और 'गुणी' विशेषण है। 'मनुष्य वही है जो गुणी है'—इस प्रकार गुणी विशेषण यहां मानुष विशेष्य की स्थापना करता है। आगे 'गुणी' स्वयं विशेष्य हो गया है और उस का विशेषण है 'कोविद'।—'गुणी वही है जो कोविद है—इस प्रकार कोविद विशेषण ने गुणी विशेष्य की स्थापना

की है। फिर आगे कोविद विशेष्य बन गया है और उस की स्थापना 'कवि' विशेषण से की गई है। आगे 'कवि' भी विशेष्य हो गया है और उसकी स्थापना की गई है—'जो उक्ति अनूप' विशेषण से।

इस प्रकार यहां पूर्व २ विशेष्य हैं और उत्तर २ विशेषण हैं, और विशेषणों के द्वारा विशेष्यों की स्थापना की गई है।

(२) सुमति वह जु निज हित लखै, हित वह जित उपकार।
उपकृति वह जहँ साधुता, साधुन हरि आधार॥

यहां पूर्व विशेष्य 'सुमति' की उत्तर विशेषण 'जु निज हित लखै' के द्वारा स्थापना की गई है। आगे 'हित' स्वयं विशेष्य हो गया है और 'जित उपकार' विशेषण से उस की स्थापना की गई है। आगे 'उपकार' भी विशेष्य हो गया है और 'जहँ साधुता' विशेषण से उस की स्थापना है। उस से आगे 'साधु' भी विशेष्य हो गया है और उस की स्थापना की गई है—'हरि आधार' विशेषण से।

(२) विशेषण के द्वारा विशेष्य का निषेध—

(१) गेह न कछु जहँ तनय नहिं, तनय न विनय-विहीन।
विनय न कछु विद्या बिना, विद्या बुधि बिन खीन॥

यहां पूर्व कथित विशेष्य 'गेह' का 'जहँ तनय नहिं' विशेषण के द्वारा निषेध किया गया है। (बिना पुत्र के घर कुछ नहीं।) इसी प्रकार 'तनय' का 'विनय-विहीन' विशेषण के द्वारा निषेध है। (जो विनय-विहीन है, वह तनय नहीं)। इसी प्रकार 'विनय' का 'विद्या बिना' के द्वारा निषेध है (विद्या-रहित विनय, विनय नहीं)।

अन्त में 'विद्या' का 'बुद्धि के बिना' निषेध है (बुद्धि रहित विद्या कुछ नहीं) यह द्वितीय प्रकार की एकावली है।

(२) सोभति वह न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीह[1] दया न दिखै जिन माहीं॥

वह सभा नहीं, जहां वृद्ध नहीं, वे वृद्ध नहीं जो पढ़े हुए नहीं, वे पढ़े हुए नहीं जो साधु संगति में नहीं रहते और वे साधु नहीं जिनके मन में दया नहीं है। इस प्रकार यहां उत्तरोत्तर विशेषणों के द्वारा पूर्व २ विशेष्यों का निषेध किया गया है। इस से यह द्वितीय एकावली है।

कारणमाला

जहां पहले कहा हुआ पदार्थ आगे कहे हुए पदार्थ का कारण हो और पूर्व कार्य फिर अगले का कारण बनता हुआ चला जाय, या इसके विपरीत आगे कहा हुआ पदार्थ पूर्व कथित पदार्थ का कारण बनता हुआ चला जाय, वहां कारणमाला अलंकार होता है❀।

कारणमाला का अर्थ है—कारणों की माला—या लड़ी। जहां एक पदार्थ दूसरे का कारण बने और वह उससे अगले का। इस प्रकार जहां कारणों की माला सी बन जाय, वहां कारणमाला होती है इसे ही हेतुमाला भी कहते हैं। कई आचार्य इसे 'गुंफ' कहते हैं।

---

१ दीर्घ।

❀ पूरब-पूरब हेतु जहँ, उत्तर-उत्तर काज,
उत्तर-उत्तर हेतु जहँ, पूरब पूरब काज,
तहाँ हेतुमाला कहत, कवि कोविद सिरताज॥ (मतिराम)

कारणमाला में दो पदार्थ कथन किये जाते हैं। पहला दूसरे का कारण होता है, दूसरा (कार्य) तीसरे का कारण बन जाता है। या इससे विपरीत दूसरा पहले का कारण होता है। इस प्रकार कारणमाला के दो भेद हो जाते हैं—

(१) पूर्व पूर्व कारण। उत्तर उत्तर कार्य ।

(२) पूर्व पूर्व कार्य। उत्तर उत्तर कारण ।

उदाहरण

प्रथम कारणमाला

पूर्व पूर्व कारण, उत्तर उत्तर कार्य।

(१) विद्या देती विनय को, विनय पात्रता मित्त।
पात्रत्वै धन, धन धरम, धरम देत सुख नित्त ॥

यहां 'विद्या' पूर्व कही गई है और 'विनय' पीछे। विद्या विनय को देती है। इस से 'विद्या' कारण और 'विनय' कार्य है। फिर 'विनय' (पूर्वकार्य) अगली 'पात्रता' का कारण है। फिर 'पात्रता' उस से अगले 'धन' का कारण है। फिर 'धन' उस से अगले 'धर्म' का कारण है और फिर 'धर्म' उस से अगले 'सुख' का कारण है।

इस प्रकार यहां पूर्व पूर्व कथित पदार्थ उत्तर उत्तर कथित पदार्थ का कारण बनता हुआ चला गया है इस से यहां प्रथम कारणमाला है।

(२) बिनु विस्वास भगति नहीं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपने हुँ, जीव न लह विश्राम ॥

यहां विश्वास भक्ति का कारण है, भक्ति राम की कृपा का कारण है और राम की कृपा जीवों की शान्ति का कारण है।

द्वितीय कारणमाला

पूर्व २ कार्य, उत्तर २ कारण--

(१) अन्न मूल घन, घनन को मूल जज्ञ अभिराम।
ताको धन, धन को धरम, धर्ममूल हरिनाम॥

यहां पूर्व कथित 'अन्न' कार्य है और उत्तर कथित 'घन' (वर्षा) उसका कारण है। आगे वही कारण 'घन' कार्य बन गया है और 'यज्ञ' उसका कारण है। उस से आगे 'यज्ञ' का कारण 'धन' और 'धन' का कारण 'धर्म' और 'धर्म' का कारण 'हरिनाम' बताया गया है। इस प्रकार पूर्व पूर्व कथित कार्यों के उत्तर २ कथित कारण बनते हुए चले गये हैं। इससे यहां द्वितीय कारणमाला है।

(१) राम कृपा है भक्ति तें, भक्ति भाग्य तें होय।

यहां पूर्व कथित 'रामकृपा' का कारण उत्तर कथित 'भक्ति' है। फिर 'भक्ति' का कारण 'भाग्य' बताया है। इस प्रकार उत्तर २ कारण हैं। इस से यहां द्वितीय कारणमाला है।

कारणमाला और एकावली में भेद

एकावली में कारण-कार्य-भाव-सम्बन्ध अपेक्षित नहीं। कारणमाला में कारण-कार्य-भाव-सम्बन्ध आवश्यक है। एकावली में विशेष्य-विशेषण-भाव-सम्बन्ध होता है वैसे ये दोनों ही शृंखला-बन्धमूलक हैं।

एकावली अधिक व्यापक है, पर कारणमाला का विषय केवल कारण-कार्य-भाव-सम्बन्ध तक ही सीमित है।

सार

जहां पहले कही हुई वस्तु की अपेक्षा आगे कही हुई वस्तु

में अधिक उत्कर्ष, या अधिक अपकर्ष बताया जाय, वहां सार अलंकार होता है* ।

सार में भी शृंखला सी बनी होती है । पहली वस्तु से अगली अधिक उत्तम, उससे अगली उससे अधिक उत्तम या इसी क्रम से उत्तरोत्तर निकृष्ट बताई जाती है इस प्रकार सार भी दो प्रकार का हो जाता है—

(१) जहां पूर्व की अपेक्षा उत्तर में उत्कर्ष बताया जाय ।

(२) जहां पूर्व की अपेक्षा उत्तर में अपकर्ष बताया जाय ॥

उत्कर्ष से अभिप्राय है—गुण कथन या प्रशंसा, और अपकर्ष का अर्थ है—दोष कथन या निन्दा ।

उदाहरण

(१) प्रथम सार (उत्कर्ष)

(१) मधु ते मधुरी है सुधा, ता ते कविता जान ।

यहां पूर्व 'मधु' से उत्तर 'सुधा' अधिक मीठी और सुधा से उत्तर 'कविता' उस से अधिक मीठी बताई गई है । इस प्रकार उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन होने से यहां प्रथम सार है ।

(२) मखमल ते कोमल महा कदलि गरभ को पात ।
ताहू ते कोमल अधिक, राम, तुम्हारे गात ॥

मखमल से कदली स्तम्भ के अन्दर के पत्ते अधिक कोमल होते हैं, और कदलीपात से राम के अङ्ग अधिक कोमल हैं । यहां भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष बताया गया है ।

---

* उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत सज्ञान । (मतिराम)

(२) द्वितीय सार (अपकर्ष)

(१) तृण ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु मांगनों ॥

यहां तृण से हलकी रूई है और रूई से हलका है—मांगना। इस प्रकार उत्तरोत्तर अपकर्ष दिखाया गया है।

(२) शिला कठोरी काठ तें, ता तें लोह कठोर।
ताहू ते कीन्हीं कठिन, मन तुव नन्द किसोर।

काठ से शिला कठोर है, शिला से लोहा कठोर है। उस से भी कठोर कृष्ण का मन है (जो भक्तों की प्रार्थना पर भी नहीं पसीजता) यहां उत्तरोत्तर अपकर्ष दिखाया गया है।

कई बार किसी वस्तु का 'सार' बताने में भी यह अलङ्कार होता है—

जग में जीवन सार है, तासों संपति सार।
संपति सों गुन सार हैं, गुन सों पर उपकार ॥

यहां जगत का सार 'जीवन' है, जीवन का सार 'सम्पत्ति' है सम्पत्ति का सार 'गुण' हैं और गुणों का सार 'परोपकार' है। इस प्रकार उत्तरोत्तर का सार वर्णन किया गया है। यह भी सार अलङ्कार है।

(५) गूढ़ार्थ-प्रतीति-मूलक अर्थालङ्कार

व्याजोक्ति

जहां प्रगट होते हुए किसी रहस्य को बहाने से छिपाने का वर्णन हो, वहां व्याजोक्ति अलङ्कार होता है ❀।

❀औरै मिस कर कह कछू, रूप छिपावै जोय।
व्याज सहित बरनन करै, व्याज उक्ति है सोय ॥ (सा० सा०)

व्याजोक्ति का अर्थ है—व्याज=बहाने से, उक्ति=कथन, बहाना बनाकर बात छिपाना।

उदाहरण

(१) सावँत नृप तुव त्रास अरि, फिरत पहार पहार।
बिन पूछैं लागत कहन, खेलन आए सिकार॥

यहां सावंत नृप के शत्रु उस के डर से पहाड़ों में मारे २ फिरते हैं। पर जब कोई परिचित व्यक्ति उन को मिलता है, तो कहीं हमारा रहस्य (कि त्रास के कारण हम मारे २ यहां फिर रहे हैं) प्रगट न हो जाय, वे कह देते हैं—'हम तो यहां शिकार खेलने आये हैं।'

यहां प्रगट होते हुए रहस्य (त्रास) को (शिकार खेलने के) बहाने से छिपा लिया है। अतः यहां व्याजोक्ति अलंकार है।

(२) बाइसिकल तें भू गिरयो, फटे वस्त्र समुदाय।
प्रगट भये फिर यों कही, झाड़ी उरझयो जाय॥

यहां बाइसिकल से गिरने और वस्त्र फटने के प्रगट होते हुए रहस्य को 'झाड़ियों में फंस गया था' इस बहाने से छिपाया गया है। इस से यहां व्याजोक्ति अलंकार है।

नोट—पर्यायोक्ति में किसी काम को 'करने के लिये' बहाने से काम लिया जाता है। व्याजोक्ति में 'हुए २ काम को' छिपाने के लिये बहाना बनाया जाता है।

निरुक्ति

जहां किसी शब्द का चमत्कारपूर्ण कल्पित निर्वचन बताया जाय, वहां निरुक्ति अलङ्कार होता है।

किसी शब्द के प्रसिद्ध या व्याकरणसंमत निर्वचन को निरुक्ति अलंकार नहीं कहते। इस में निर्वचन की कल्पना ऐसी विलक्षण होनी चाहिये जिस से चमत्कार आजाय। इस प्रकार इस में दो बातें आवश्यक हैं।

(१) निर्वचन कल्पित हो।

(२) निर्वचन में चमत्कार हो।

उदाहरण

(१) गो, गोपी, गोकुल तजो, लई न सुधि सखि कोय।
मोहन जाको नाम है, मोह कहां से होय॥

कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर पीछे गोपियां परस्पर कहती हैं कि कृष्ण ने गौएं, गोपियां और गोकुल सब को छोड़ दिया है। फिर किसी की सुध ही नहीं ली। हां ठीक भी है जिस का नाम ही मोहन (मोह + न) है, उसको मोह कहां से होगा।

यहां मोहन शब्द का कल्पित निर्वचन दिया गया है—मोह + न = जिसको मोह नहीं है।

(२) मद छोड्यो अरु मोह सों, मुख फेरयो तुम धीर।
खरे मदन मोहन बने, मालवीय, द्विज-वीर॥

यहां पं० 'मदन मोहन' मालवीय जी के नाम का भी इसी प्रकार का कल्पित निर्वचन दिया गया है।

मद छोड्यो अर्थात् जिस में मद नहीं है = मद + न = मदन। मोह सों मुख फेरयो अर्थात् जिस में मोह नहीं है = मोह + न = मोहन।

लोकोक्ति

जहां प्रसङ्ग से किसी कहावत (लोकोक्ति या मुहाविरे का चमत्कारपूर्ण प्रयोग कर दिया जाय, वहां लोकोक्ति अलङ्कार होता है * ।

उदाहरण

(१) इत-उत बैठ खोय दिन-रैना, ज्ञान कहौ तो स्रवन सुनै ना।
कहत, ज्ञान में है भट भेड़ौ, 'नाच न आवै आंगन टेड़ौ' ॥

यहां 'नाच न आवै आंगन टेड़ौ' इस लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है ।

(२) ये ब्रजबाल सबै इकसी, 'हरिचंदजु' मंडिलि ही बिगरी है।
एक जो होइ तो ज्ञान सिखाइए, 'कूपहि में यहां भांग परी है'॥

यहां 'कूप में भांग पड़ना' मुहाविरे का प्रयोग है ।

स्वभावोक्ति

जहां किसी वस्तु या दृश्य का बिल्कुल स्वाभाविक वर्णन हो—जिस में सादगी में ही चमत्कार हो—वहां स्वभावोक्ति अलङ्कार होता है † ।

स्वभावोक्ति का अर्थ है—स्वभाव का कथन—जो वस्तु जैसी है, उसका वैसा वर्णन । इस में पदार्थ का सादा – सच्चा स्वरूप अङ्कित

---

* जहँ प्रसङ्गवस लोक की, कहनावत दरसाय ।
ऐसो बर्नन होय जहँ, सो लोकोक्ति कहाय ॥ (सा० सा०)

† जैसो जाको रूप, गुण, वचन, बनाव, सुभाव।
सो बर्नन के करन कों, सुभावोक्ति कवि गाव ॥ (सा० सागर)

किया जाता है। वस्तुतः जहां सादगी में चमत्कार हो, वहां यह अलङ्कार होता है*। इसका दूसरा नाम 'जाति' भी है।

उदाहरण

(१) नृप द्वार कुमारि चलीं पुर की, अँगराग सुगंध उड़ै गहरी।
सजि भूषण अंबर रंग बिरंग, उमंगन सौं मन माहिं भरी॥
कबरीनं[1] मैं मंजु प्रसून-गुछे, दृग कोरन काजर-लीक परी।
सित भाल पै रोचन-बिन्दु लसै, पग जावकं[2]-रेख रची उछरी॥

यहां राजभवन में पुर की कुमारियों के सजधज कर जाने का वर्णन बिल्कुल स्वाभाविक रूप में हुआ है। इस से यहां स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

(२) फिर फिर सुन्दर ग्रीवा मोरत। देखन रथ पाछे जो घोरत॥
कबहुंक डरपि बान मति लागे। पिछलो गात समेटत आगे॥
अधरों की मग दाभ गिरावत। थकित खुले मुख ते बिखरावत॥
लेत कुलांच लखो तुम अब ही। धरत पाँव धरती जब तब ही॥

यहां दुष्यन्त के बाण के डर से भागते हुए आश्रममृग का बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन है। इससे यहां स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

अत्युक्ति

जहां किसी के सौंदर्य, विरह, उदारता, शूरता आदि का

---

*दण्डी आदि पुराने आचार्य इसको 'आद्या अलंकृति' कहते हैं और इस की बड़ी प्रभुता गाते हैं——शास्त्रेष्वेतस्य साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम् (दण्डी)। १ सिर की वेणी। २ लाक्षारस।

बहुत बढ़ा कर अत्यन्त असत्य पूर्ण वर्णन किया जाय, वहां अत्युक्ति अलङ्कार होता है*।

अत्युक्ति का अर्थ है अति=बहुत अधिक बढ़ा कर, उक्ति= कथन करना। जहां किसी का कोई गुण बहुत बढ़ाकर—यहां तक कि वह असत्य की सीमा तक पहुँच जाय—वर्णन किया जाय, वहां अत्युक्ति होती है।

वस्तुत: अतिशयोक्ति और अत्युक्ति में बहुत कम भेद है। हां, अतिशयोक्ति में कुछ उपमेय का सादृश्य रहता है—उस में कुछ सत्य का अंश भी होता है, पर अत्युक्ति में बिल्कुल ही असत्य कथन होता है और उपमेय आदि की चर्चा यहां नहीं होती।

होने को तो प्रत्येक गुण की अत्युक्ति हो सकती है, पर हिन्दी में सुन्दरता, शूरता, उदारता, विरह, प्रेम और कीर्ति इन छः गुणों की ही अत्युक्ति मानी जाती है।

उदाहरण

(१) सुन्दरता

जब जब चढ़ति अटानि दिन, चंदमुखी यह बाम।
तब तब घर घर धरत हैं, दीप बारि सब गाम॥

जब दिन में यह चन्द्रमुखी अटारी पर चढ़ती है, तो ग्राम वाले अपने अपने घरों में दीपक जला देते हैं।

यहां चन्द्रमुखी की सुन्दरता का इतना बढ़ा कर वर्णन किया गया है कि ग्राम वाले दिन में उसके मुख को चन्द्रोदय समझ कर रात आई जानकर दीपक जला देते हैं।

---

*जो सुन्दरतादिकनि की, अधिक झुठाई होय।
ताहि कहत अत्युक्ति हैं, कवि पण्डित सब कोय॥ (मतिराम)

(२) शूरता

लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि, दिग्गज डोले॥

यहां लक्ष्मण की शूरता का अत्यधिक बढ़ा कर वर्णन है। वे जब क्रोध से बोले तो पृथ्वी डगमगा गई और दिग्गज कांप उठे। पृथ्वी का डगमगाना और दिग्गजों का डोलना असत्य और मिथ्या है।

(३) उदारता

नृप सावँत के दान कौ, समझ लेव यह हाल।
रवि के रथ चाहत छुवन, कवि के भवन बिसाल॥

यहां सावंत नृप के दान की उदारता का अत्यधिक बढ़ा कर वर्णन है। उसके दान से कवियों के इतने विशाल और ऊंचे भवन बन गये कि सूर्य के रथ को छूना चाहते हैं।

(४) विरह

ब्रह की जब आंच लगी तन में, तब जाय परी यमुना जल में।
विरहानल तैं जल सूक गयो, मछली विह छांड गई तर में॥
जब रेत फटी रु पताल गई, तब सेस जरयो धरती तर में।
'रसखान' कहे एहि आंच मिटे, जब आय के स्याम लगे गर में।

जब तन में श्रीकृष्ण के विरह की आग लगी, तो उसे बुझाने के लिये यमुना के जल में छलांग मारी। विरह की अग्नि से यमुना का सारा जल सूख गया। मछलियां भाग गईं। रेत फट गई। आग पाताल में पहुंच गई। वहां शेषनाग भी जल गया। इस प्रकार यहां विरह का अत्यधिक बढ़ा कर असत्यपूर्ण वर्णन किया गया है।

(५) प्रेम

कागद पै लिखत न बनत, मुख पै कह्यौ न जात।
कहि है सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात॥

(६) कीर्ति

राजन तव कीरति कथा, कापै कही न जाय।
चहूँ छई तिहुँ लोक महँ, कहूँ समावै नांय॥

इन दोनों पद्यों में क्रमशः प्रेम और कीर्ति को अत्यधिक बढ़ा कर प्रतिपादन किया गया है। इस से यहां अत्युक्ति अलङ्कार है।

उभयालङ्कार[1]

यदि एक पद्य में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारों का मिश्रण हो, या एक से अधिक अलङ्कार हों, तो उन्हें उभयालङ्कार या मिश्रित अलङ्कार कहते हैं[2]।

इनके दो भेद—

(१) संसृष्टि। (२) संकर।

---

१ संस्कृत में उभयालङ्कार का जो लक्षण किया जाता है, हिन्दी के अलङ्कार-लेखकों ने उसे नहीं लिया। अतः यहां हिन्दी के अनुसार ही लिखा जाता है।

२ भूषण इक से अधिक जहँ, सो उभयालंकार। (ला० भगवानदीन)

जहां एक थल पाइए, भूषन बहु सुखसार।
सो उभयालंकार है, सो है उभय प्रकार॥ (बिहारीलाल)

जहां पर एक से अधिक अलङ्कार स्वतन्त्र रूप से तिल और चावलों की तरह मिले हुए दिखाई दें, वहां संसृष्टि होती है[1]।

जहां एक से अधिक अलङ्कार पानी और दूध की तरह परस्पर मिले हुए हों, वहां संकर होता है[2]।

मिश्रण या मिलाप दो ही प्रकार का होता है। एक वह जिस में सब की पृथक् सत्ता स्वतन्त्र रूप से रहे। दूसरा वह जहां एक दूसरे में बिल्कुल विलीन हो जाय, और अपनी सत्ता को खो दे। तिल और चावल मिले रहने पर भी 'यह तिल है' 'यह चावल है' इस प्रकार पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं। पर दूध और पानी का मिलाप ऐसा होता है कि एक दूसरे में मिल कर अपनी सत्ता को छोड़ देता है। इसी आधार पर मिश्रित अलङ्कारों के भी दो भेद हैं। संसृष्टि में मिलाप तिल-चावल का सा होता है। और सङ्कर में मिलाप दूध-पानी का सा होता है।

उदाहरण

संसृष्टि

(१) लसत मंजु मुनि-मंडली, मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञान-सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

यहां 'मंजु', मुनि, 'मण्डली' और 'मध्य'—इनमें 'म' की आवृत्ति से अनुप्रास (वृत्त्यनुप्रास) है। 'ज्ञान-सभा जनु तनु धरे' इस में उत्प्रेक्षा है। इससे यहां शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारों की संसृष्टि है।

---

१. जुदे जुदे भासैं सकल, अपने अपने ठाम।
तिल-तन्दुल की रीति करि, सो संसृष्टि सुनाम॥ (ला० भगवानदीन)

२. पय पानी की रीति तें, होंय परस्पर लीन।
ता कहँ संकर नाम दै, भाषत सुकवि प्रवीन॥ (ला० भगवानदीन)

(२) खञ्जन, मधुकर, मीन, मृग, ये सब एक समीप।
घूंघट पट में देखिये, पाले मदन-महीप ॥

यहां पूर्वार्ध में 'म' की आवृत्ति से अनुप्रास है। 'खञ्जन', 'मधुकर', 'मीन' ये सब उपमान ही हैं, इनके उपमेय कथन नहीं किये गये, इससे अतिशयोक्ति है। फिर 'मदन-महीप' में रूपक है।

यहां ये सब पृथक् २ सत्ता रखते हुए तिल-चावलों की भांति मिले हुए हैं। अतः यहां संसृष्टि है।

संकर

(१) पवन-विकम्पित-महीरुहों के, तले कांपती छाया।
चन्द्र-सिंह-हत-तिमिर-गजों की, मानों खण्डित काया ॥

चांदनी रात में वायु से कंपित वृक्षों के नीचे हिलती हुई छाया ऐसी प्रतीत होती है मानों चन्द्र रूपी शेर से मारे हुए अन्धकार रूपी हाथियों के कटे हुए शरीर के खण्ड हैं।

यहां 'मानों' से उत्प्रेक्षा है। और 'चन्द्र-सिंह' और 'तिमिर-गज' में परम्परित रूपक है। उत्प्रेक्षा और रूपक एक दूसरे में विलीन हैं। यहां रूपक उत्प्रेक्षा को पुष्ट करता है। रूपक के बिना उत्प्रेक्षा बनती नहीं। अतः यहां संकर है।

(२) श्रीवृंदावन बसि बढ़ै, उर अनन्य अनुराग।
करिय कृपा मो पर मिलै, प्रभु-पद-पदम पराग ॥

यहां 'प्रभुपद पदम पराग' में रूपक है, 'प' की आवृत्ति से अनुप्रास भी है, और 'पद-पदम' में यमक भी है। इस प्रकार ये तीनों पृथक् नहीं किये जा सकते। ये एक दूसरे में लीन से होगये हैं। इससे यहां भी संकर है।

छन्द-परिचय

परिशिष्ट (क)

छन्द-परिचय

छन्दों को काव्य के वस्त्र या पोशाक कह सकते हैं। छन्द शब्द का मूल अर्थ भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। इस शब्द का सीधा सम्बन्ध उसी धातु से है जिस से छंद, प्रच्छद (कपड़ा), आच्छादन आदि शब्द बने हैं। इस प्रकार छन्द· काव्य-पुरुष की पोशाक हैं।

जैसे पोशाक मनुष्य के स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, मान-प्रतिष्ठा, प्रभाव और सौन्दर्य के लिये आवश्यक है, वैसे ही काव्य के लिये छन्द हैं। यह ठीक है कि हमारे हां छन्दों को काव्य-लक्षण का अनिवार्य रूप से आवश्यक अंग नहीं माना गया, पर इतर भाषाओं में कविता का निर्धारक लक्षण ही 'छन्दोमयी रचना' है। हमें भी साधारण बातचीत में 'कविता' या 'काव्य' से 'छन्दोबद्ध' रचना का ही बोध होता है। उस ने कविता लिखी है'—यह सुनकर हम यही समझते हैं कि कुछ छन्दों में लिखा गया है। इस प्रकार छन्द और काव्य का अभेद रूप से ही व्यवहार होता है।

यद्यपि छन्द बाह्य वेष-भूषा के साधन हैं, तथापि यह सब स्वीकार करते हैं कि छन्दों में अपना अलग एक विलक्षण सौन्दर्य और आकर्षण होता है। तुलसी रामायण का अर्थ न समझने वाले भी उस की चौपाइयों और दोहों को पढ़कर आनन्दमग्न होते देखे गये हैं।

साधारण से साधारण बात जिस में कुछ भी चमत्कार नहीं, यदि उसको भी छन्दोबद्ध कर दिया जाय, तो उस में कुछ सौन्दर्य अवश्य आजाता है। जैसे कोई कन्या कहे—'मां मुझे बहुत भूख लग रही है। मैं पाठशाला से छुट्टी लेकर आई हूँ। मुझे रोटी दो।' तो यह साधारण बात हुई। यदि इसी बात को वह छन्दोबद्ध करके यों कहे, तो इस में अवश्य कुछ विलक्षणता आजाती है—

भूख लगी मां रोटी दे। आई हूँ मैं छुट्टी ले॥

यह उदाहरण हम ने यह दिखाने के लिये दिया है कि साधारण से साधारण बोलचाल में भी जब छन्द का प्रयोग हो जाता है, तो उस में कुछ अद्भुत विलक्षणता और सौन्दर्य आ जाता है, जिस का अनुभव सब करते हैं।

न केवल सौन्दर्य, अपितु छन्दोबद्ध रचना का प्रभाव भी अधिक होता है। जो मोहिनी शक्ति छन्दों में है, वह गद्य में नहीं पाई जाती। एक फड़कती हुई कविता सहस्रों श्रोताओं को जिस प्रकार मंत्र-मुग्ध कर सकती है, उस प्रकार गद्य के भाषण नहीं कर सकते। छन्दों के आकर्षण को बाल, वृद्ध, पठित और अपठित सभी स्वीकार करते हैं। मानवीय हृदय में छन्दों के लिये यह अद्भुत आकर्षण सृष्टि के आदि काल से ही चला आ रहा है।

सौन्दर्य और प्रभाव के साथ ही छन्दों के द्वारा विचारों को सर्वप्रिय और स्थायी होने में बड़ी सहायता मिलती है। छन्द मनुष्य की स्मृति में भी सुगमता से चढ़ जाते हैं और देर तक वहीं स्थिर रहते हैं। इसी लिये सुन्दर लोकोक्तियां, उपयोगी कहावतें और अनूठी सूक्तियां छन्दों में होने के कारण ही सर्वत्र प्रचरित हैं और कण्ठ-परम्परा के द्वारा ही चिर काल से जीवित हैं। यदि

ये छन्दों में न होतीं, तो इन की इतनी सर्व-प्रियता, इतना विस्तृत प्रचार और इतना लम्बा दीर्घ-जीवन कदापि न होता[1]।

इस से यह स्पष्ट है कि छन्दों में अपना एक अलग आकर्षण, सौन्दर्य और प्रभाव होता है जिसके साथ काव्य का आकर्षण, सौन्दर्य और प्रभाव मिल जाने से सोने पर सुहागे का काम हो जाता है।

इस लिये काव्य के लिये छन्द अत्यन्त उपयुक्त पोशाक हैं जिन से काव्य का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है और प्रौढ़ता को प्राप्त होकर देश की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। यही कारण है कि हमारे साहित्य के प्रायः सभी महाकवियों ने अपनी दिव्य सूझ के उत्कृष्ट रत्न हमें छन्दोमयी वाणी में ही दिये हैं। अतः साहित्य के यथावत् ज्ञान के लिये काव्य के इतर अंगों के समान छन्दों का ज्ञान भी नितान्त आवश्यक है[2]।

---

१ वैदिक-साहित्य में एक रूपक के द्वारा यह बात बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट की है। 'देवताओं ने मृत्यु के डर से छन्दों की शरण ली। छन्दों ने आच्छादन करके उनको मृत्यु-मुख से बचा लिया'। वास्तव में विचारों—और निर्माताओं का भी, मृत्यु-मुख से रक्षण और उनका दीर्घ जीवन छन्दों के द्वारा ही होता है। गद्य-रचना बहुत दीर्घ-जीवी और सर्व-प्रिय नहीं होती। सभी जातियों का चिरस्थायी और सुन्दर साहित्य छन्दों में हैं।

२ ऐतिहासिक दृष्टि से 'छन्द-विज्ञान' का साहित्य के 'पृथक् अंग' के रूप में विकास अलंकार आदि इतर अंगों के 'पृथक् शास्त्र' बनने से बहुत पूर्व का है। वैदिक साहित्य में अलंकार के प्रयोग तो मिलते हैं पर 'स्वतन्त्र शास्त्र' के रूप में उनका विवेचन नहीं है। छन्द तो वैदिक

इसलिये इस परिशिष्ट में छन्द शास्त्र की मुख्य मुख्य परिभाषाओं और हिन्दी के मुख्य मुख्य छन्दों का संक्षेप से परिचय दिया जाता है।

छन्द का लक्षण

जो रचना मात्राओं अथवा वर्णों की संख्या, क्रम, यति, गति तथा तुकबन्दी के विशेष नियमों के अनुसार बने हुए पादों में बंधी हुई हो, उसे छन्द कहते हैं *।

वाक्य रचना के दो ही प्रकार हैं—गद्य और पद्य। पाद-बद्ध रचना को पद्य और पाद-बन्धन से रहित रचना को गद्य कहते हैं। पद्य का ही दूसरा नाम छन्द है।

उक्त लक्षण के अनुसार छन्द में ये बातें आवश्यक हैं—

(१) नियमानुसार 'पाद' बने हुए हों।

(२) प्रत्येक पाद में 'मात्राओं' अथवा वर्णों की संख्या और 'क्रम' नियत हो

(३) यति के नियम।

काल से ही 'स्वतन्त्र' वेदाङ्ग की पदवी प्राप्त किये हुए हैं। अब भी अंग्रेजी आदि भाषाओं में 'अलंकार विवेचन' का अभी 'स्वतन्त्र-शास्त्र' के रूप में विकास नहीं हुआ, पर छन्द तो उन में भी चिरकाल से ही 'स्वतन्त्र-शास्त्र' के रूप में विकसित चले आते हैं। अतः छन्द शास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। और यह उसकी उपयोगिता और उपादेयता का प्रमाण है।

* मत्त वरण गति यति नियम, अंतहिं समता बंद।
जा पद-रचना में मिलें, 'भानु' भनत स्वइ छंद ॥ (जगन्नाथ)
मात्रा कौ वा बरण कौ, नियम चरन प्रति होय।
समता होय तुकान्त में, छन्द कहावत सोय ॥ (सा० सा०)

(४) गति के नियम और
(५) तुक के नियम विद्यमान हों ।

अतः इन परिभाषाओं को भी संक्षेप से समझ लेना चाहिये ।

पाद या चरण

पाद या चरण एक प्रकार के सांचे हैं जिन में ढल कर भाषा साबन की टिकियों के समान एक सार, एक परिमाण, एक तोल, एक माप और एक शकल में व्यक्त होती है ।

पाद का अर्थ है—'चतुर्थ भाग' या चौथा हिस्सा । प्रायः छन्दों के चार पाद होते हैं । प्रत्येक पाद में वर्णों या मात्राओं की संख्या और उन का क्रम, नियत होता है । छन्द का परिमाण ठीक रखने के लिये पादों का एक सा होना आवश्यक है ।

नोट—किन्हीं बड़े २ छन्दों में चार के स्थान पर छः पाद भी होते हैं । सारांश यह है कि छन्द को चाहे जितने भागों में विभक्त कर लो, एक भाग को 'पाद' कहेंगे । इसे ही 'पद' या 'चरण' भी कहते हैं ।

पाद दो प्रकार के हैं—सम या युग्म और विषम या अयुग्म । प्रथम, तृतीय और पञ्चम पाद 'विषम पाद' कहे जाते हैं और द्वितीय, चतुर्थ तथा षष्ठ पादों को 'सम पाद' कहते हैं ।

मात्रा और वर्ण

छन्दःशास्त्र में ह्रस्व स्वर को 'मात्रा' कहते हैं । 'स्वर' कहने से स्वर से युक्त व्यञ्जन भी ले लिये जाते हैं । व्यञ्जनों की मात्रा नहीं गिनी जाती—जैसे 'स्थ्य' में स्+थ्+य् ये तीन व्यञ्जन हैं और ह्रस्व 'अ' स्वर है । यहां 'स्थ्य' की एक ही मात्रा ली जायगी । इसी प्रकार 'कमल' में तीन मात्राएं मानी जाती हैं ।

दीर्घ स्वरों और वर्णों की दो मात्राएं गिनी जाती हैं। जैसे 'राजा' में चार मात्राएं हैं। 'ज्ञान' में तीन मात्राएं हैं।

मात्रा को 'मत्ता', 'मत्त', 'कला' और 'कल' भी कहते हैं।

वर्ण का अर्थ है अक्षर—अर्थात् जिसमें स्वर एक हो, व्यञ्जन चाहे जितने हों। ये भी दो प्रकार के हैं, ह्रस्व और दीर्घ। वर्णों के गिनने में दीर्घ वर्ण का भी एक ही वर्ण गिना जाता है। जैसे 'राजा' में दो वर्ण गिने जाते हैं। 'ज्ञान' के भी दो वर्ण माने जाते हैं। 'स्वास्थ्य' के दो वर्ण गिने जाएंगे।

मात्राओं और वर्णों की गिनती में यही भेद है। मात्राओं की गिनती ह्रस्व स्वरों के अनुसार होती है, पर वर्णों की गिनती वर्णों के अनुसार होती है। जैसे—

गुन अवगुन जानत सब कोई।

इस में मात्राएं तो १६ हैं, पर वर्ण केवल १३ हैं।

नोट—मात्रा तथा वर्ण गिनने में हल् व्यञ्जन को नहीं गिनते। न तो उस की मात्रा ही गिनी जाती है और न वर्ण। जैसे—महान् की ३ मात्राएं और २ वर्ण गिने जाएंगे। हां हल् व्यञ्जन के पूर्व का लघु वर्ण गुरु माना जाता है। जैसे सरित् में 'रि' गुरु माना जायगा और इस की दो मात्राएं गिनी जाएंगी।

संख्या और क्रम

मात्राओं और वर्णों की गिनती को 'संख्या' कहते हैं। इन के गिनने की रीति ऊपर बता दी है। इसका मूल आधार ह्रस्व और दीर्घ वर्ण हैं। ह्रस्व वर्णों को लघु और दीर्घ वर्णों को गुरु कहते हैं। किस छन्द में कितनी मात्राएं हों या कितने वर्ण हों, यह उनकी

'संख्या' है। और कहां २ पर लघु हों, कहां २ पर गुरु हों, इस लघु-गुरु के स्थान सम्बन्धी नियम को 'क्रम' कहते हैं।

छन्दःशास्त्र में प्रचलित लघु, गुरु की परिभाषा को भी समझ लेना चाहिये।

लघु और गुरु

लघु—(१) अ, इ, उ और ऋ इन ह्रस्व स्वरों तथा इन के साथ मिले हुए एक, दो, तीन या इस से भी अधिक व्यञ्जनों को लघु मानते हैं। जैसे—'कमल' में तीनों वर्ण लघु हैं। 'क्रम' में दोनों लघु हैं। 'त्र्य' 'स्थ्य' ये दोनों लघु हैं।

(२) ँ अर्ध बिन्दु वाले ह्रस्व स्वर भी लघु माने जाते हैं। जैसे—'विहँसि' में 'हँ' लघु है।

गुरु—(१) आ, ई, ऊ, ॠ आदि दीर्घ स्वर और इन से युक्त व्यञ्जन गुरु होते हैं। जैसे—'राजा', 'दीदी', 'चूना' आदि सब गुरु हैं।

(२) ए, ऐ, ओ, औ ये संयुक्त स्वर और इन से युक्त व्यञ्जन भी गुरु होते हैं। जैसे—'ऐसा', 'गोला', 'नौका' आदि सब गुरु हैं।

(३) अनुस्वार वाले सभी वर्ण गुरु होते हैं। जैसे—'दंगा', 'गंजा' में 'दं' और 'गं' गुरु हैं।

(४) विसर्गान्त सभी वर्ण गुरु होते हैं। जैसे—दुःख में 'दुः' गुरु है।

(५) संयुक्त वर्ण से पूर्व का लघु वर्ण भी गुरु माना जाता है। जैसे—'सत्य' में 'स', 'दुष्ट' में 'दु' और 'धर्म में 'ध' गुरु हैं।

(६) हल् अक्षर से पूर्व का लघु वर्ण भी गुरु माना जाता है। जैसे—सत् में 'स' और सरित् में 'रि' गुरु हैं।

(७) पाद के अन्त में होने वाले लघु वर्ण को भी कभी २ आवश्यकता होने पर गुरु मान लेते हैं। जैसे —'लीला तुम्हारी अति ही विचित्र'—इस पाद के अन्त में 'त्र' यद्यपि लघु है, पर छन्द शुद्धि के लिये इसे गुरु मान लिया जाता है। (यह इन्द्रवज्रा छन्द है। इसका लक्षण आगे देखो)।

अपवाद

छन्दों में लघु-गुरु के मानने का आधार 'बल' या 'भार' है। अर्थात् जिस वर्ण के उच्चारण में अधिक भार दे दिया जाय वह लघु भी गुरु हो जाता है और जिस वर्ण के उच्चारण में कम भार दिया जाय वह गुरु भी लघु हो जाता है। जैसे--

(१) तुम्हारा, तुम्हारे, तुम्हारी, कन्हैया, जुन्हैया आदि शब्दों में आदि के 'तु', 'क' और 'जु' पर भार न होने से ये लघु ही माने जाते हैं। (यद्यपि उक्त नियम ५ के अनुसार ये गुरु होने चाहियें।

(२) 'जामवंत के वचन सोहाये'—इस में 'सो' गुरु होने पर भी लघु माना जाता है। अतः इस को पूरे बल से 'सो' नहीं पढ़ते, किन्तु हलका कर के 'सु' का सा करके पढ़ते हैं। गुरु मानने से मात्राओं की गिनती में अन्तर होने से (चौपाई=१६ मात्रा) छन्द भ्रष्ट हो जाता है।

वस्तुतः कवियों को यह खुली आज्ञा है कि वे छन्द की शुद्धि के लिये शब्द की कांट छांट करके उसे ठीक करलें ❀।

❀ अपि माषं मषं कुर्यात्, छन्दोभङ्गं न कारयेत्।

(१) कहीं हल् वर्ण में स्वर मिलाकर लिखते हैं। जैसे—

'विघ्न' को 'विघन', 'महान्' को 'महान' और 'सूर्य' को 'सूरज' करके लिखते हैं।

(२) कहीं लघुवर्ण को दीर्घ बना लेते हैं। जैसे—

जप तप योग यज्ञ व्रत दाना। विमल विराग ज्ञान विज्ञाना॥

इस में 'दान' को 'दाना' और 'विज्ञान' को 'विज्ञाना' करके लिखा गया है।

(३) कहीं सानुस्वार वर्ण को अर्ध बिन्दु लगाकर लघु कर लेते हैं। जैसे—'हंसना' में 'हं' उक्त नियम ३ के अनुसार गुरु है। पर कवि इसे 'हँसना' करके लिख देते हैं जिस से यह लघु हो जाता है।

लघु का चिह्न खड़ी पाई (।) और गुरु का चिह्न वक्र (ऽ) है।

गण

ऊपर कहा गया है कि लघु-गुरु वर्णों के स्थान-सम्बन्धी नियम को 'क्रम' कहते हैं। क्रम को सुगमता से समझने और स्मरण रखने के लिये छन्दःशास्त्र में गणों की कल्पना की गई है। उसे भी संक्षेप से समझ लेना चाहिये।

वर्णों की 'संख्या' और 'क्रम' की सुगमता के लिये तीन तीन वर्णों का एक एक गण बना दिया गया है, इन से छन्द के पाद में लघु, गुरु वर्णों का स्थान और परिमाण नियत हो जाता है। ये गण संख्या में आठ हैं। इन्हीं के उलट फेर से सब छन्द बनते हैं। इनके नाम तथा लक्षण इस प्रकार हैं—

सं०	गण का नाम	सङ्केत	लक्षण	स्वरूप	उदाहरण
१	म-गण	म	तीनों वर्ण गुरु हों।	ऽऽऽ	मायावी। सावित्री।
२	न-गण	न	तीनों वर्ण लघु हों।	।।।	कमल। नयन।
३	भ-गण	भ	आदि में गुरु। पिछले दोनों वर्ण लघु हों।	ऽ।।	बालक। मिश्रित।
४	य-गण	य	आदि में लघु। पिछले दोनों वर्ण गुरु हों।	।ऽऽ	पुराना। भवानी
५	ज-गण	ज	मध्य में गुरु। आदि अन्त में लघु।	।ऽ।	समाज। प्रभाव।
६	र-गण	र	मध्य में लघु। आदि अन्त में गुरु।	ऽ।ऽ	बालिका। मोहिनी।
७	स-गण	स	अन्त में गुरु। आदि और मध्य में लघु।	।।ऽ	जननी। सरला।
८	त-गण	त	अन्त में लघु। आदि और मध्य में गुरु।	ऽऽ।	संसार, राजेंद्र।

इन गणों को सुगमता से स्मरण रखने के लिये इस सूत्र को भली प्रकार समझ लेना चाहिये—

यमाताराजभानसलगम्।

इस में प्रथम के आठ अक्षर तो आठों गणों से नाम हैं। पीछे ल—लघु और गम—गुरु। इन्हीं को पिंगल के दशाक्षर

कहते हैं । सभी गणों के लक्षण भी इसी सूत्र में हैं । जिस गण को जानना हो, उसी अक्षर के आगे के दो और अक्षर मिलाने से उन के लघु-गुरु क्रम के अनुसार उस गण का लक्षण होता है। जैसे त-गण की पहचान के लिये, 'ता' के आगे के दो अक्षर और मिलाएं, तो 'ताराज' बन जायगा, अर्थात् अन्त में लघु और आदि-मध्य में गुरु । यही त-गण का लक्षण है । इसी प्रकार य-गण, न-गण आदि का भी लक्षण जान लेना चाहिये।

निम्न-लिखित दोहे से भी गणों के लक्षण जाने जा सकते हैं—

आदि मध्य अवसान में, भ ज स सदा गुरु मान।
क्रम से होते य र त लघु, म न गुरु लघु त्रय जान॥

अर्थात् भ ज स क्रम से आदि गुरु, मध्य गुरु और अन्त गुरु होते हैं। अर्थात् आदि गुरु भ-गण, मध्य गुरु ज-गण और अन्त गुरु स-गण होता है । इस प्रकार य र त क्रम से आदि लघु, मध्य लघु और अन्त लघु होते हैं । अर्थात् आदि लघु य-गण, मध्य लघु र-गण और अन्त लघु त-गण होता है । म-गण में तीनों गुरु, और न-गण में तीनों लघु होते हैं।

नोट—विद्यार्थियों को मात्रा गिनने और गण जानने का अच्छी तरह अभ्यास कर लेना चाहिये । इस से छन्दों के लक्षणों को समझने और स्मरण रखने में बड़ी सुगमता होगी।

यति

विराम या विश्राम को यति कहते हैं । साधारणतया पाद के अन्त में यति अवश्य होती है । पर बड़े २ छन्दों में (जहां एक पाद में इतने अधिक अक्षर हों कि उन का एक सांस में उच्चारण

करना कठिन हो) उन की लय को ठीक रखने के लिये एक २ पाद में दो या तीन तक भी यतियां होती हैं। इस प्रकार बड़े २ छन्दों में यति के भी विशेष नियम हैं, जो आगे छन्दों के लक्षणों में दिये गये हैं।

गति

छन्द के पढ़ने की लय या पाठ-प्रवाह को गति कहते हैं। मात्राओं की संख्या पूरी होने पर भी गति या लय के बिना छन्द नहीं बनता। इस गति के कोई खास नियम नहीं बताये जा सकते। यह अभ्यास और कुछ नाद के नियमों पर निर्भर है। जैसे—

'जब सकोप लखन बचन बोले'।

इस में चौपाई के लक्षणानुसार पूरी १६ मात्राएं हैं । पर गति ठीक न होने से यह चौपाई नहीं कही जा सकती। इसी की गति को ठीक करके यदि यों पढ़ा जाय—

लखन सकोप बचन जब बोले।

तो यह ठीक चौपाई बन जाती है। अतः छन्दों के तोल-माप में वर्ण या मात्राओं की समानता के बाद भी 'गति' या लय का होना आवश्यक है।

तुक

पाद के अन्त में स्वर-सहित-वर्णों की आवृत्ति को तुक कहते हैं।

तुक के प्रयोग से कविता में एक विशेष कर्ण-प्रियता और कमनीयता आजाती है। इसी को शब्दालङ्कारों में 'अन्त्यानु-प्रास' कह आये हैं।

पांच मात्राओं का तुक उत्तम गिनते हैं। चार मात्राओं का मध्यम, तीन का निकृष्ट और दो का त्याज्य मानते हैं।

तुकों का मिलान भिन्न २ छन्दों में भिन्न २ प्रकार का होता है—कहीं सभी पादों में एक ही तुक चलता है। उसे 'सर्वान्त्य' कहते हैं जैसे सवैया आदि में। कहीं पहले चरण का तुक तीसरे से मिलता है। उसे विषमान्त्य कहते हैं। जैसे सोरठा आदि में। कहीं दूसरे चरण का तुक चौथे से मिलता है। उसे समान्त्य कहते हैं। जैसे दोहा आदि में। कहीं पहले चरण का दूसरे के साथ और तीसरे का चौथे के साथ मिलता है। उसे विषम-समान्त्य कहते हैं। जैसे चौपाई आदि में। कहीं इस के विपरीत पहले का तुक तीसरे से और दूसरे का चौथे से मिलता है। उसे समान्त्य-विषमान्त्य कहते हैं। कहीं २ किसी भी चरण का तुक नहीं मिलता। उसे अतुकान्त्य या भिन्नान्त्य कहते हैं।

नोट—हिन्दी में मात्रा छन्दों में तो तुक का नियम है, पर वर्णिक वृत्तों में इस पर विशेष ज़ोर नहीं दिया जाता। यह कवि की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।

छन्दों के भेद

हिन्दी में छन्दों के दो भेद हैं—

(१) मात्रिक छन्द या जाति।

(२) वर्णिक छन्द या वृत्त।

जिन छन्दों में मात्राओं की गणना से पाद-रचना का नियम है, उन्हें मात्रिक छन्द कहते हैं।

जिन छन्दों में वर्णों की गणना और क्रम से पाद रचना का नियम है, उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं।

वर्ण-वृत्त और मात्रिक छन्द की पहचान यह है कि जिस छन्द के चारों चरणों में वर्णों की संख्या और क्रम ठीक समान रूप में मिल जाय, वह वर्ण वृत्त होता है। जहां चारों पादों में वर्णों की संख्या न्यूनाधिक हो और मात्राओं की संख्या एक समान मिले वह मात्रिक छन्द होता है ❀। जैसे—

	वर्ण संख्या	क्रम
मुझे नहीं ज्ञात कि मैं कहाँ हूँ,	११	। ऽ । ऽऽ। । ऽ । ऽ ऽ
हरे! यहाँ हूँ अथवा वहाँ हूँ।	११	ज त ज ग ग
विचारता किन्तु यही यहाँ हूँ,	११	" " " " "
नहीं वहाँ क्या तुम, मैं जहाँ हूँ॥	११	" " " " "

इस में चारों चरणों में वर्णों की संख्या और लघु-गुरु का क्रम एक समान है। इससे यह छन्द वर्णिक वृत्त (उपेन्द्रवज्रा) है।

बंदौं सन्त असज्जन चरणा,	मात्रा १६	वर्ण ११
दुख-प्रद उभय बीच कछु वरणा।	,, १६	,, १४
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं,	,, १६	,, १२
मिलत एक दारुण दुख देहीं॥	,, १६	,, १२

यहां प्रत्येक चरण में मात्राएं तो ठीक १६ हैं, पर वर्ण किसी पाद में ११, किसी में १२ और किसी में १४ हैं। इस से यह छन्द मात्रिक छन्द (चौपाई) है।

नोट—मात्रिक छन्दों में 'क्रम' का विशेष नियम नहीं होता। इस से उन में 'गणों' का भी विशेष काम नहीं पड़ता।

❀ गुरु लघु चारों चरण में, क्रम से मिलें समान।
वर्ण वृत्त है, अन्यथा, मात्रिक छन्द प्रमान॥ (हिं० प० रचना)

चरणों की गति के आधार पर छन्दों के तीन भेद किये जाते हैं—

(१) सम, (२) अर्ध-सम और (३) विषम।

जिन के चारों चरणों में मात्राओं या वर्णों की संख्या और लघु-गुरु क्रम तथा यति के नियम समान हों, वे 'सम छन्द' कहे जाते हैं[1]। जैसे चौपाई, इन्द्रवज्रा आदि।

जिनका पहला पाद तीसरे पाद के समान हो, और दूसरा पाद चौथे पाद के समान हो, उन्हें 'अर्धसम' कहते हैं[2]। जैसे—दोहा, सोरठा आदि।

जो सम और अर्धसम न हों—अर्थात् जिन के चारों ही चरणों में भिन्न २ लक्षण विद्यमान हों, उन्हें 'विषम' कहते हैं[3]। कई आचार्यों के मत में चार चरणों से कम या अधिक चरणों वाले सारे छन्द 'विषम कहाते हैं। जैसे कुण्डलिया, छप्पय आदि।

मात्रिक छन्दों में प्रतिचरण ३२ मात्राओं तक के छन्द साधारण छन्द कहे जाते हैं, और जिनके प्रतिचरण में ३२ से अधिक मात्राएं हों, उन्हें दण्डक कहते हैं।

वर्णिक वृत्तों में प्रतिचरण २१ अक्षरों तक वाले तो साधारण वृत्त हैं। २२ से २६ अक्षर प्रतिचरण वालों को सवैया कहते हैं। और इसके भी ऊपर वालों को दण्डक कहते हैं।

दण्डकों के भी दो भेद हैं। क्रमयुक्त या साधारण दण्डक और मुक्तक। साधारण दण्डकों में संख्या और क्रम दोनों होते हैं, पर

---

१ चहुँ चरणनि गति एक सी, सो सम छन्द बखानु। (छन्द प्र०)

२ विषम-विषम, सम-सम चरण, तुल्य अर्ध-सम छन्द। (छन्द प्र०)

३ ना सम ना पुनि अर्धसम, विषम जानिये छन्द। (छन्द प्र०)

मुक्तकों में वर्णों की प्रतिपाद संख्या का ही नियम है। लघु-गुरु क्रम का नियम उन पर लागू नहीं होता। वे गणों के या क्रम के बन्धन से मुक्त होते हैं[४]।

हिन्दी के कुछ मुख्य छन्द

मात्रिक (सम)

इन छन्दों में मात्राओं की गणना से पाद रखे जाते हैं। चारों पाद एक समान होते हैं।

चौपाई

(सोलह कल 'ज त' अन्त न दीजै)

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं। पाद के अन्त में जगण या तगण (ISI, SSI) नहीं रखे जाते। अन्त में प्रायः दो गुरु होते हैं। तुक प्रथम चरण का दूसरे से और तीसरे का चौथे से मिलता है। यति पाद के अन्त में होती है।

उदाहरण

जब ते राम ब्याहि घर आए,	मात्राएं	१६	अन्त	SS
नित नव मंगल मोद बधाए।	,,	१६	,,	SS
भुवन चारिदस भूधर भारी,	,,	१६	,,	SS
सुकृत मेघ वरषहिँ सुख बारी॥	,,	१६	,,	SS

---

४ अच्चर की गिनती यदा, कहुँ कहुँ गुरु-लघु नेम।
वर्ण वृत्त में ताहि कवि, मुक्तक कहैं सप्रेम॥ (भिखारी दास)

शृंगार

(आदि में त्रिकल द्विकल ग-ल अंत।)

इसके प्रत्येक पाद में १६ मात्राएं होती हैं। पाद के अन्त में (गुरु-लघु ऽ।) आते हैं। यति पादान्त में होती है।

उदाहरण

(१) लखौ री नट वर नंद कुमार	मात्राएं १६ अन्त ऽ।
जमुन तट रोक रहौ ब्रज नार।	„ १६ „ ऽ।
(२) निछावर कर दें हम सर्वस्व	„ १६ अन्त ऽ।
हमारा प्यारा भारत वर्ष।	„ १६ „ ऽ।

कुण्डल

(द्वादस षट-चार कलन, कुण्डिल छवि छाई।)

इसके प्रत्येक पाद में २२ मात्राएं होती हैं। अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। यति १२—१० पर होती है।

उदाहरण

जय कृपालु कृष्णचंद, फंद के कटैया,	मात्राएं २२
वृन्दावन कुंज कुंज, खोर के खिलैया।	„ २२
मोर मुकुट, हाथ लकुट, बेनु के बजैया,	„ २२
कवि 'बिहार' कृपा करहु, नन्द के कन्हैया॥	„ २२

दिग्पाल

(कल भानु भानु भावैं, दिग्पाल छन्द गावैं।)

इसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएं होती हैं। यति १२। १२ पर होती है। अन्त में दो गुरु वर्ण या कहीं कहीं ऽ। या। ऽ आते हैं। मात्रा ५। १७ लघु हों, तो लय ठीक बनती है।

उदाहरण

(१) पीछे कदम ज़रा भी, इक से न टालते हैं।
रण भूमि में खुशी से, निज रक्त डालते हैं॥
(२) सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोसताँ हमारा।

नोट—इसमें 'से' को लघु करके पढ़ा जाता है। इस से उसकी एक मात्रा गिनी जायगी। (देखो अपवाद नियम)।

यह छन्द प्रायः गज़ल की तर्ज़ पर ठेका कव्वाली में गाया जा सकता है।

रोला

(ग्यारह तेरह यती, मत्त चौबिस कह रोला)

इसके प्रत्येक पाद में चौबीस मात्राएं होती हैं। यति ११।१३ पर होती है। अन्त में दो गुरु या दो लघु पड़ते हैं।

उदाहरण

(१) ससि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र, पत्र बिनु तरुवर सूनो॥
(२) जो जग हित पर प्राण, निछावर है कर पाता।
जिस का तन है किसी, लोक हित में लग जाता॥

गीतिका

(रत्न रवि कल धारिकै लग, अन्त रचिये गीतिका।

इस के प्रत्येक पाद में २६ मात्राएं होती है। चौदह और बारह पर यति होती है। अन्त में लघु-गुरु (IS) होते हैं।

उदाहरण

(१) धर्म के मग में अधर्मी, से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग, में कदम धरना नहीं।

कहीं २ इसकी यति बारह और चौदह पर भी होती है—
यथा—राम ही की भक्ति में, अपनी भलाई जानिये।

हरिगीतिका

(श्रृंगार भूषण अंत ल-ग जन, गाइये हरिगीतिका।)

इस के प्रत्येक पाद में २८ मात्राएं होती हैं। सोलह और बारह पर यति होती है। अन्त में लघु-गुरु (।ऽ) होते हैं।

उदाहरण

कहती हुई यों उत्तरा के, नेत्र जल से भर गये।
हिम के कणों से पूर्ण मानों, हो गये पंकज नये॥

विधाता

(लहौ बिद्या लहौ रत्नै, लखौ रचना विधाता की।)

इसके प्रत्येक पाद में २८ मात्राएं होती हैं। यति १४।१४ पर होती है। १, ८, १५ मात्राएं सदा लघु होती हैं।

उदाहरण

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खो देंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे॥

यह भी गज़ल की तर्ज पर गाया जा सकता है।

मात्रिक (अर्धसम)

इन छन्दों में भी मात्राओं की गिनती से पाद रचना का नियम है। पर इन में चारों चरण समान नहीं होते। प्रथम और तृतीय पाद एक समान होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद एक समान होते हैं।

बरवै

(प्रथम तृतिय पद रवि कल, धर कर साज ।
द्वितिय चतुर मुनि कल रच, बरवै साज ॥)

इस में विषम पादों में १२ और सम पादों में सात मात्राएं होती हैं । साज—अन्त में एक जगण (।ऽ।) होना चाहिये । यति पादान्त में होती है ।

उदाहरण

सब से मिल कर रह मन, (प्रथम पाद १२ मात्रा)
बैर बिसार । (द्वितीय ,, ७ मात्रा, अन्त में ।ऽ।)
दुर्लभ नर तन पाकर, (तृतीय ,, १२ ,,)
कर उपकार ॥ (चतुर्थ ,, ७ ,, ,, ।ऽ।)

दोहा

(विषम चरण तेरह कला, सम ग्यारह निरधार ।
प्रथम तृतिय बराजित जगण, दोहा विविध प्रकार ॥)

दोहे के विषम पादों में (प्रथम तथा तृतीय पाद में) तेरह मात्राएं होती हैं, तथा सम पादों में (द्वितीय तथा चतुर्थ पाद में) ग्यारह मात्राएं होती हैं, यति पादान्त में होती है । विषम पादों में जगण (।ऽ।) नहीं होना चाहिये । सम पादों के अन्त में लघु होना चाहिये । तुक सम पादों की मिलती है, विषमों की नहीं मिलती ।

उदाहरण

बनना चाहो वीर जो, (१३ मात्रा— ×)
करना गौरव-त्राण । (११ मात्रा—तुक)

या कर धारो लेखनी, (१३ मात्रा— ×)
या विकराल कृपाण ॥ (११ मात्रा—तुक)

सोरठा

(प्रथम तृतिय पद रुद्र, द्वितिय चतुर तेरह कला।
बिरचित बुद्धि समुद्र, दोहा उलटें सोरठा ॥)

इस में सम-चरणों में १३ और विषम चरणों में ११ मात्राएं होती हैं। यह दोहे का उलटा होता है। तुक प्रथम तृतीय पाद का मिलता है। कहीं २ द्वितीय चतुर्थ का भी मिल जाता है, पर उसका नियम नहीं।

उदाहरण

मूक होइ बाचाल,	११ मात्रा
पंगु चढ़ै गिरिवर गहना।	१३ ,,
जासु कृपा सु दयाल,	११ ,,
द्रवौ सकल कलिमल दहन ॥	१३ ,,

उल्लाला

(उल्लाल बिषम पंद्रह कला, सम पद तेरह धारिये।)

इस के विषम चरणों में १५ और सम चरणों में १३ मात्राएं होती हैं। यति पादान्त में होती है। तुक सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण

हे शरणदायिनी देवि तू,	१५ मात्रा ×
करती सब का त्राण है।	१३ ,, तुक
हे मातृ भूमि संतान हम,	१५ ,, ×
तू जननी तू प्राण है।	१३ ,, तुक

मात्रिक (विषम)

इन छन्दों में मात्राओं और यति के नियम भिन्न २ चरणों में भिन्न२ होते हैं। इस से इन्हें विषम कहते हैं। ये प्रायः बड़े २ छः चरणों वाले छन्द होते हैं।

कुंडलिया

(धरिये चौबिस मत्त के, षट पद बुद्धि प्रमान,
दो पद दोहा के करौ, चौपद रोला मान।
चौपद रोला मान, छंद की लय पहचानों,
आदि अन्त के शब्द, एक सम हौं छबि आनों।
कवि 'बिहार' यह माँहि॑, रीति कुंडल की करिए,
जुरह गूँज से गूँज, नाम कुंडलिया धरिए॥)

इस छन्द में ६ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २४ मात्राएं होती हैं। चरणों का क्रम इस प्रकार है—

दोहे के प्रथम और द्वितीय चरण मिलाकर कुण्डलिया का प्रथम चरण। दोहे के तृतीय और चतुर्थ चरण मिलाकर कुण्डलिया का द्वितीय चरण। रोला के चार चरण क्रम से—कुण्डलिया के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ चरण।

अर्थात् एक पूरा दोहा और पूरा रोला छन्द मिला कर कुण्डलिया छन्द बनता है।

कुण्डलिया में दोहे के चौथे चरण के शब्द रोला के प्रारम्भ में दोहराये जाते हैं। कुण्डलिया में जिस शब्द से प्रारम्भ करते हैं उसी से अन्त करते हैं। यति के नियम वही हैं जो दोहा और रोला में है (१३।११ दोहे में और ११।१३ रोला में)

उक्त लक्षण में कुण्डलिया का उदाहरण भी विद्यमान है। यहां 'चौपद रोला मान' यह दोहे का अन्तिम चरण, रोला के प्रारम्भ में दोहराया गया है तथा 'धरिये' शब्द से प्रारम्भ करके अन्तिम शब्द फिर 'धरिये' है।

उदाहरण

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान,
चंचल जल दिन चारि को, ठाँउ न रहत निदान।
ठांउ न रहत निदान, जिवत जग में जस लीजै,
मीठे बचन सुनाय, बिनय सब ही की कीजै।
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घर तौलत,
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥

छप्पय

इसके छः चरण होते हैं। प्रथम चार चरण तो रोला के और पिछले दो चरण उल्लाला के चारों चरणों को मिला कर बनाये जाते हैं। अर्थात् रोला और उल्लाला दोनों से मिलकर छप्पय बनता है।

उदाहरण

जहाँ स्वतन्त्र विचार, न बदलें मन में मुख में,
जहाँ न बाधक बने, सबल निबलों के सुख में।
सब को जहाँ समान, निजोन्नति का अवसर हो,
शान्तिदायिनी निशा, हर्ष सूचक वासर हो॥
सब भान्ति सुशासित हों जहाँ, समता के सुख कर नियम।
बस उसी स्वतन्त्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश हम॥

वर्णिक वृत्त

इन छन्दों में वर्णों की संख्या और लघु-गुरु वर्णों के क्रम के नियम से पाद रखे जाते हैं। ये प्रायः सभी सम होते हैं। लघु-गुरु वर्णों का क्रम गणों की परिभाषा से दर्शाया गया है। प्रत्येक छन्द का लक्षण उसी छन्द में दिया गया है जिस से छन्द ढूंढने में बड़ी सुगमता होगी।

अनुष्टुप

(वर्ण पंचम छोटा हो, दीर्घ हो आठवां छठा।
सातवां लघु युग्मों में, तो अनुष्टुप जानिये ॥)

इसके प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं। पञ्चम अक्षर लघु होता है। षष्ठ और अष्टम अक्षर गुरु होते हैं। सप्तम अक्षर सम पादों में लघु और विषम पादों में गुरु होता है।

उदाहरण

स्वस्तिवाद विरक्तों का, और ही कुछ वस्तु है।
वाक्यों में उन के होता, ईश का एवमस्तु है॥

इन्द्रवज्रा

(है इन्द्रवज्रा 'त त जा ग गा' से।)

इस के प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं। इनका क्रम यह है— त त ज ग ग
SSI SSI ISI S S

उदाहरण

मैं राज्य की चाह नहीं करूँगा,
है जो तुम्हें इष्ट वही करूँगा।
सन्तान जो सत्यवती जनेगी,
राज्याधिकारी वह ही बनेगी॥

उपेन्द्रवज्रा

(उपेन्द्रवज्रा 'ज त जा ग गा' से।)

इसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं। इनका क्रम यह है— ज त ज ग ग

ISI SSI ISI S S

उदाहरण

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

उपजाति

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण को उपजाति कहते हैं। इसके दोनों छन्दों के पाद-भेद से १६ भेद बन जाते हैं। यहां केवल दो के उदाहरण दिये जाते हैं।

उदाहरण

(१) परोपकारी बन वीर आओ,	१	उपेन्द्रवज्रा
नीचे पड़े भारत को उठाओ।	२	इन्द्रवज्रा
हे मित्र त्यागो मद मोह माया,	३	इन्द्रवज्रा
नहीं रहेगी यह नित्य काया॥	४	उपेन्द्रवज्रा
(२) विवाह भी मैं न कभी करूंगा,	१	उपेन्द्रवज्रा
आजन्म आद्याश्रम में रहूँगा।	२	इन्द्रवज्रा
निश्चिन्त यों सत्यवती सुखी हो,	३	इन्द्रवज्रा
सन्तान से भी न कभी दुखी हो॥	४	इन्द्रवज्रा

भुजङ्गप्रयात

(भुजङ्गप्रयातं करो 'चार या' से ।)

इस के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। इन का क्रम यह है— य य य य

ISS ISS ISS ISS

उदाहरण

अरी व्यर्थ है व्यञ्जनों की बड़ाई,
हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई।
वही पाक है जो बिना भूख भावे,
बता किन्तु तू ही उसे कौन खावे॥

तोटक

('स स स स' कहें सब तोटक को ।)

इस के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। इन का क्रम यह है— स स स स

IIS IIS IIS IIS

उदाहरण

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
'हम भी कुछ हैं'—यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुञ्जित गान रहे॥

वंशस्थ

(सुजान वंशस्थ कहें 'ज ता ज रा'।)

इस के प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। इन का क्रम यह है— ज त ज र

ISI SSI ISI SIS

उदाहरण

प्रवाह होते तक शेष श्वास के,
सरक्त होते तक एक भी शिरा।
सशक्त होते तक एक लोम के,
लगा रहूँगा हित सर्व भूत में॥

द्रुतविलम्बित

(द्रुतविलम्बित है 'न भ भा र' से।)

इसके प्रत्येक चरण में १२ अक्षर होते हैं। उन का क्रम यह है—न भ भ र
ǀǀǀ SǀǀSǀǀ SǀS

उदाहरण

न जिस में कुछ पौरुष हो यहाँ,
सफलता वह पा सकता कहाँ?
अपुरुषार्थ भयङ्कर पाप है,
न उस में यश है न प्रताप है॥

वसन्ततिलका

(होवे वसन्ततिलका 'त भ जा ज गा गा'।)

इसके प्रत्येक पाद में १४ अक्षर होते हैं। इनका क्रम यह है—
त भ ज ज ग ग
SSǀ Sǀǀ ǀSǀ ǀSǀ S S

उदाहरण

रे क्रोध जो सतत अग्नि बिना जलावे,
भस्मावशेष नर के तनु कोब नावे।
ऐसा न और तुझ सा जग बीच पाया,
हारे विलोक हम किन्तु न दृष्टि आया॥

मालिनी

('न न म य य' मिलें तो, मालिनी छन्द होवे।)

इसके प्रत्येक चरण में १५ अक्षर होते हैं। इन का क्रम यह है—न न म य य

III III SSS ISS ISS

उदाहरण

पल पल जिस के मैं, पन्थ को देखती थी,
निशिदिन जिस के ही, ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिस के है, सोहती मुक्त-माला,
वह नव-नलिनी-से, नैनवाला कहाँ है॥

पञ्चचामर

('ज रा ज रा ज गा' कहें, सुबुद्ध पञ्चचामरम्।)

इस के प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं। यति आठ-आठ पर होती हैं। अक्षरों का क्रम यह है—(एक लघु, एक गुरु इसी प्रकार अन्त तक)। ज र ज र ज ग

ISI SIS ISI SIS ISI S

उदाहरण

उसी उदार की कथा, सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा, कृतार्थ भाव मानती।
उसी उदार की सदा, सजीव कीर्ति कूजती,
तथा उसी उदार को, समस्त सृष्टि पूजती॥

मन्दाक्रान्ता

(मन्दाक्रान्ता, फल-रस यती, 'मा भ ना ता त गा गा'।) (फल-४, रस-६।)

इसके प्रत्येक चरण में १७ वर्ण होते हैं। यति ४।६।७ पर होती है। वर्णों का क्रम यह हैं—म भ न त त ग ग

SSS SII III SSI SSI S S

उदाहरण

दो वंशों में प्रकट करके, पावनी लोकलीला,
सौ पुत्रों से, अधिक जिनकी, पुत्रियां पूतशीला।
त्यागी भी हैं, शरण जिनके, जो अनासक्त गेही।
राजा योगी, जय जनक वे, पुण्यदेही विदेही॥

शिखरिणी

(यती छः ग्यारा पै, 'य म न स भ ला गा' शिखरिणी।)

इस के प्रत्येक चरण में १७ अक्षर होते हैं। छः और ग्यारह पर यति होती है। अक्षरों का क्रम यह है—

य म न स भ ल ग

ISS SSS III IIS SII I S

उदाहरण

मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के,
बहे आँसू होके, सखि सब उपालम्भ गल के।
उन्हें हो आई जो, निरख मुझ को नीरव दया,
उसी की पीड़ा का, अनुभव मुझे हा! रह गया॥

शार्दूलविक्रीडित

(मास-द्वीप 'म सा ज सा त त ग' से, शार्दूलविक्रीडिता।)

(मास—१२, द्वीप—७)

इस के प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं। यति १२ और ७ पर होती है। अक्षरों का क्रम यह है—

म स ज स त त ग

SSS IIS ISI IIS SSI SSI S

उदाहरण

जाती प्रेम न जाति-पाँति तुझ से, पूछी किसी की कहीं,
तेरे सन्मुख रङ्क और नृप में है भेद होता नहीं।
दोनों ही बन और गेह जग में, हैं तुल्य तेरे लिये,
ऊंचे मन्दिर से कुटी तक सभी, हैं चाह तेरी किये॥

स्रग्धरा

('मा रा भा ना य या या,' सत-सत यति से, स्रग्धरा मानते हैं)

इसके प्रत्येक चरण में २१ अक्षर होते हैं। सात, सात, सात पर यति होती है। अक्षरों का क्रम यह है—

म र भ न य य य

SSS SIS SII III ISS ISS ISS

उदाहरण

नाना फूलों फलों से, अनुपम जग की, वाटिका है विचित्रा,
भोक्ता हैं सैंकड़ों ही, मधुप शुक तथा, कोकिला गानशीला।
कौवे भी हैं अनेकों, पर धन हरने, में सदा अग्रगामी,
कोई है एक माली, सुधि इन सब की, जो सदा ले रहा है॥

सवैया

एक पाद में २२ अक्षरों से लेकर २६ अक्षरों तक वाले छन्द सवैया कहे जाते हैं। इनके कई भेद हैं। यहाँ एक दो के ही लक्षण और उदाहरण दिये जाते हैं।

मत्तगयंद

(मत्तगयंद कहें उस को, जब 'सात भ' दो गुरु अंत मिलें तो।)

इस के प्रत्येक चरण में २३ अक्षर होते हैं। पहले सात भ-गण फिर अन्त में दो गुरु वर्ण।

भ भ भ भ भ भ भ ग ग
SII SII SII SII SII SII SII S S

उदाहरण

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं,
आठहुँ सिद्धि नवोनिधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं।
नैनन सों 'रसखान' जबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं,
कोटिन वे कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

नोट—यहां पर छन्द की शुद्धि के लिये द्वितीय पाद में 'नन्द की गाय' में 'की' को लघु पढ़ना चाहिये। इसी प्रकार चतुर्थ पाद में 'कलधौत के' और 'करील के' में 'के' को भी लघु पढ़ना चाहिये (देखो अपवाद नियम)।

दुर्मिल

इस के प्रत्येक चरण में २४ अक्षर होते हैं। ये आठों सगण होते हैं—

स स स स स स स स
IIS IIS IIS IIS IIS IIS IIS IIS

उदाहरण

शुभ सत्य सनातन धर्म वही, जिस में मत पन्थ अनेक नहीं,
बल वर्द्धक वेद वही जिस में, उपदेश अनर्थक एक नहीं।

सुख मूल समाधि वही जिसमें, व्रत बन्धन की कुछ टेक नहीं।
कवि 'शङ्कर' बुद्धि विशुद्ध वही जिसके मन में अविवेक नहीं॥

नोट—दुर्मिल के अन्त में एक गुरु और बढ़ा देने से 'सुन्दरी सवैया' हो जाता है। इसी छन्द के अन्त में 'है' और पढ़ने से यह सुन्दरी हो जायगा।

दण्डक

जिन छन्दों के एक पाद में २६ से अधिक अक्षर हों, उन्हें दण्डक कहते हैं। ये दो प्रकार के हैं—प्रथम वे जिनमें अक्षरों के लघु गुरु का क्रम नियत होता है। दूसरे वे जिनमें केवल अक्षरों की संख्या नियत होती है, लघु गुरु का क्रम कोई नहीं होता। उन्हें मुक्तक कहते हैं।

दण्डकों में 'सुधानिधि' और 'अनंग-शेखर' आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें एक गुरु एक लघु के क्रम से (सुधानिधि) या एक लघु एक गुरु के क्रम से (अनंग शेखर में) अक्षर रखे जाते हैं।

मुक्तकों में घनाक्षरी, रूप घनाक्षरी, देव घनाक्षरी आदि प्रसिद्ध हैं। ये ३१, ३२ और ३३ अक्षरों के छन्द हैं। आज कल इनका प्रयोग बहुत कम होता है।

———

परिशिष्ट (ख)

उदाहरण-माला

नीचे विद्यार्थियों के अभ्यास के लिये कुछ पद्य दिये जाते हैं। इन में जिस २ पद्य में जो २ अलङ्कार है, उसका नाम बता कर उसके लक्षण को घटावें। जहां किसी पद्य में एक से अधिक अलङ्कारों के लक्षण घटते हों, वहां किस २ अंश में कौन अलङ्कार है, इस का भी निरूपण करें। कई अलङ्कारों का नाम साथ दे दिया है। उन में लक्षणों का समन्वय करें कि कैसे वहां पर उल्लिखित अलङ्कार हैं! साथही जिन पद्यों के साथ ※ यह चिन्ह लगा है, उनके छन्दों का भी पता करें कि उन में (१) कौन २ मात्रिक छन्द हैं और कौन २ वर्णिक। (२) मात्रिक छन्दों के प्रत्येक पाद की मात्राएं गिनें और बताएं कि वहां कौन सा छन्द है। (३) वर्णिक वृत्तों में प्रत्येक पाद के अक्षर गिनें। उनके लघु-गुरु लगाकर गणों का पता करें। फिर उन का लक्षण घटा कर उसका नाम बताएं। इस प्रकार लिखकर और अपने अध्यापकों को दिखा कर अभ्यास करने से छन्दों और अलंकारों के ज्ञान में विद्यार्थियों को आशातीत लाभ होगा।

---

(१) अयि, दयामयि देवि, सुखदे, सारदे,
इधर भी निज वरद-पाणि पसार दे ॥

(२) फूट फूट कर फूट रही है, उद्यमता सिर कूट रही है ॥

(३) अब यह मिटे अविद्या रात, रुज-रजनीचर करें न घात ॥(रूपक)

*(४) देख कर उस काल उसको, जान पड़ता था यही,
मूर्तिमान महत्व से मण्डित हुई मानों मही ॥

(५) दरस-भूख लागे दृगन, भूखहिं देत भगाइ ॥

(६) मोर मनोरथ-सुर-तरु फूला । फलत करिनि जनु हतेउ समूला ॥

(७) अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥

(८) सुरभित, सुन्दर, सुखद, सुमन तुझ पर खिलते हैं ।
भान्ति भान्ति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं ॥ (अनुप्रास)

(९) निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सँकोच ॥

(१०) तेरा तेज सरजा समत्थ दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सों ॥

*(११) श्रीसरजा शिव तो जस सेत सों, होत हैं वैरिन के मुँह कारे ॥

(१२) दुख सुख सब कहँ होत है, पौरुष तजहु न मीत ।
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ॥ (लोकोक्ति)

*(१३) लौटे अतः सत्यवती बिना ही, पाया उन्होंने दुख चित्तदाही ।
पावें व्यथा क्यों न सदा अनन्त, अकार्य तो भी करते न सन्त ॥
(अर्थान्तरन्यास)

*(१४) प्रेमसिन्धु में स्वजन वर्ग को शीघ्र नहा दो ।
शत्रुजनों का गर्व खर्व कर सर्व बहा दो ॥

*(१५) चरित है मूल्य जीवन का, वचन प्रतिबिम्ब है मन का ।
सुयश है आयु सज्जन की, सुजनता है प्रभा धन की ॥

(१६) उपवन में अति भरी उमङ्ग, कलियां खिलती हैं बहु रंग ।
पर मिलता है, उनको मान, जो हैं सुखद सुगन्ध निधान ॥
(अप्रस्तुतप्रशंसा)

(१७) रत्नाभरण भरे अंगों में ऐसे सुन्दर लगते थे।
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ-सौ जुगनू जग मग जगते थे ॥
(१८) आंखें ये निगोड़ी खूब ऊधम मचाती हैं।
आप कल पाती नहीं, हमें कलपाती हैं ॥ (यमक)
(१९) केतकी की, कुन्द की, कदंब की है कथा कौन।
कल्पलतिका में कहां कांति उस जैसी है ॥
(२०) यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई।
आप विधि के हाथ से ढाली गई ॥
(२१) स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहां,
किन्तु सुरसरिता कहां, सरयू कहां।
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती ॥ (व्यतिरेक)
(२२) वे ज्यों कवि-कुल-देव धरा पर धन्य थे।
ये नायक नर-देव अपूर्व अनन्य थे ॥
(२३) ज्वाला सी किसी को, मणिमाला सी किसी को,
सुरबाला सी किसी को, वह देती दिखलाई है ॥ (उल्लेख)
(२४) पहले आंखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे।
छींटे वही उड़े थे, बड़े बड़े अश्रु वे कब थे ॥
*(२५) सखि नील-नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा! तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, निकला जिनको चरता चरता ॥
(२६) काले बादलों से, केश उसके विलोक जब,
मोर नाचते हैं, वह फूली न समाती है ॥ (भ्रांति)
*(२७) इस तत्व पर ही कौरवों से, पाण्डवों का रण हुआ।
जो भव्य भारत वर्ष के, कल्पान्त का कारण हुआ ॥

*(२८) निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी।
सच ही हैं श्रीमान, भोगते सुख बन में भी ॥

(२९) रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी।
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी ॥

*(३०) निबल के बल केवल राम हैं ॥ (यमक)

*(३१ सुमन में न सुगन्ध समायगी, पवन में वन में भर जायगी ॥

(३२) बहुरि सक्रसम विनवउँ तेही, संतत सुरानीक प्रिय जेही ॥
(श्लेष)

*(३३) महाराज रघुराज जू, कीजै कहा गुमान।
दंड, कोस, दल के धनी, सरसिज आप समान ॥ (प्रतीप)

(३४) नहिं पलास के पुहुप ये, हैं ये जरत अंगार ॥

*(३५) तनिक भीरु कभी रुकते नहीं ॥ (यमक)

(३६) बलिहारी नृपकूप की, गुण बिन बूँद न देय ॥

(३७) लही न कतहुँ हारि हिय मानी, इन्ह सम ये उपमा उर आनी ॥
(अनन्वय)

(३८) जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक ॥

(३९) नाक दम रहै जौ लौं, ना कदम टारैंगे ॥ (यमक)

(४०) गङ्गाजल मुख परत ही, पाप ताप भे दूर ॥ (अतिशयोक्ति)

(४१) नगी कन्यका पन्नगी को बजावै, सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावै ॥

(४२) कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा, को नहिं जान विदित संसार।
मात पितहिँ उरिन भये नीके, गुरुरिन रहा सोच बड़ जी के ॥

(४३) चन्द न, चन्दनविन्दु यह, मांग, न सुरसरिधार।
त्रिय न नैन, मोती लसै, मैन ! मैं न हर-नार ॥ (भ्रांतापह्नुति)

(४४) कर गहि पग-अंगूठा मुख मेलत,
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रंग खेलत ॥

(४५) नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से ।
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है ॥

(४६) देख लो साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही ।
केतु पट अंचल सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे ॥

(४७) समन्दर कर दिया नाम उसका, नाहक़ सब ने कह कह कर ।
हुए थे कुछ जमा आंसू , मेरी आंखों से बह बह कर॥ (अत्युक्ति)

*(४८) राम-चरित सर बिनु अन्हवाये । सो श्रम जाइ न कोटि उपाये ॥

(४९) भरतहिं होइ न राजमद, विधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि, छीर-सिन्धु बिनसाइ ॥

(५०) सन्त शैल सम उच्च हैं, किन्तु प्रकृति सुकुमार ॥

(५१) बेगि बुझावहु बरत बन, विरहिनि कह्यौ पुकार ।
सखिन कह्यौ किंसुक कुसुम, नाहिन ये अंगार ॥ (भ्रान्तापहुति)

(५२) सुगुन छीर अवगुन जल ताता, मिले रचेउ परपंच विधाता ।
भरत हंस रविबंस तडागा, जन्मि कीन्ह गुन दोस विभागा ॥
(रूपक)

*(५३) मन ! रमा, रमणी, रमणीयता, मिलगईं यदि ये विधियोग से ।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा, रसिकता सिकता सम है उसे ।

(५४) तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥ (विरोधाभास)

(५५) सज्जन जन को रहत सम, उदय अस्त में चित्त।
अरुण यथा रवि उदय में, तथा अस्त में नित्त ॥

(५६) कामधेनु अरु काम तरु, चिन्ता मनि मन मानि।
चौथो तेरो सुयश हूं, है मनसा-फल-दानि ॥ (तुल्ययोगिता)

(५७) तरुवर दें फल फूल दल, यही सिखावै नीति।
लहि संपति आदर करहु, आये को यह रीति ॥ (निदर्शना)

(५८) बणिक, ईख, नींबू तथा, थन, तिलहन अरु आम।
दाबे ही ते देत रस, जानत जगत तमाम ॥ (दीपक)

(५९) लाज-भरे, लाग-भरे, लाभ-भरे, लोभ-भरे,
लाली-भरे, लाड़-भरे लोचन हैं लाल के ॥

(६०) निष्कलंक सिय-बदन शुभ, शशि है नित सकलङ्क ॥

(६१) विरह ज्वाल की जरन सों, मरन भलो अति जान।
मीचु एक ही दिन दहै, दहै बिरह नित प्रान ॥ (व्यतिरेक)

(६२) केहि बिधि कहिये सिय-वदन, सरस कमल सम होय।
यह अनुदिन बिकसित रहै, निशि मलीन है सोय ॥

(६३) आली री, इन चखन की, जानै कैसी प्यास।
छकि छकि छवि-रस पियत पै, रहै प्यास की आस॥ (विशेषोक्ति)

(६४) मोहन मथुरा जात सुनि, दुखित भई व्रजबाल।
कारन बूझे ते कह्यो, मिल्यौ न नैहर हाल ॥ (व्याजोक्ति)

(६५) सांची भई कहनावति लोक की, ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।

(६६) धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति विहँसि गोद बैठाये ॥
(स्वभावोक्ति)

(६७) हिय हरि लीन्हें सबन के, रूप दिखाइ ललाम।
ऊधव, याही ते परयो, सांचो ही हरि नाम ॥ (निरुक्ति)

(६८) खंजन जुग लखि राम जू, कहत कठिन यह हीय।
हाय किते मेरी गई, खंजन नयनी सीय ॥ (स्मरण)

(६९) कनक गात राधा चली, हरि सँग बन की ओर।
हरषि चले लखि मुग्धमन, चातक, मोर, चकोर ॥ (भ्रान्ति)

(७०) जग-मृगतृष्णा में भटकि, मन-कुरङ्ग अकुलाय।
नाथ ! दयोदधि बीचि बिच, चाहत शान्ति अन्हाय ॥

(७१) तव कलत्र यह मेदिनी, है भुजंग संसक्त।
कापै करत गुमान नृप, ह्वै तासों अनुरक्त ॥ (व्याजस्तुति)

(७२) कृपण ! तिहारे चरित नित, कैहैं सुनि हैं लोग।
नहीं नहीं, तव नाम हूँ, कबहुँ न लेवे जोग ॥ (आक्षेप)

(७३) चन्द्रमुखी तुम बिन भई, ज्वालामुखी समान ॥

(७४) राधे ! तेरा चन्द मुख, उर उपजावत दाह ॥

(७५) पिय आवत सुनि आतुरी, करि कै वह सुकुमारि।
कटि की लै कै किंकिणी, चली हिये पै डारि ॥

(७६) गई रही हरि भजन को, ओटन लगी कपास ॥

(७७) सो घनश्याम जो देय रस, रस वह जो सुख देय।
सुख वह जा ते देह मन, निज अभीष्ट लहि लेय ॥

(७८) सो दया जु न धर्म धरै, धर धर्म न सो जहँ दान वृथा ही।
दान न सो जहँ साँच न 'केशव', साँच न सो जु बसै छल माहीं ॥
(एकावली)

(७९) विद्या के बिन विनय नहिं, ता बिन नर न सुपात्र।
बिन सुपात्रता धन नहीं, ता बिन धर्म न अत्र ॥

(८०) राधे ! तेरी चतुरता, को न सराहे देत।
दै कै कठिन कटाक्ष तू, हिय हीरा लहि लेत ॥ (परिवृत्ति)

(८१) उत्तम भूषण कौन ? यश, नहिं कनकालङ्कार।
सखा कौन जग ? धर्म है, नहिं नर आदिक यार ।। (परिसंख्या)

(८२) वैदन के गृह रहत खल, खल समाज मैं नाहिं।
रंज मिलै शतरंज मैं, ताप प्रतापहि माहिं ।।

(८३) यतिवर श्रुति सेवी सदा, पड़त कामिनी-जाल।
औरन को तब हाल का, कैसे कहै 'रसाल'।। (काव्यार्थापत्ति)

(८४) कैसे फूले देखियत, प्रात कमल के गोत।
'दास' मित्र उद्योत लखि, सबै प्रफुल्लित होत।। (अर्थान्तरन्यास)

*(८५) तेरा होना, उदय व्रज में, तो अन्धेरा करेगा ।।

(८६) पानी घड़ी चुरावती, मार खात घड़ियाल ।। (असंगति)

(८७) सिंह पछारयो बाहुबल, कहा स्यार की बात ।।

(८८) नामहिं में नहिं नीति, का करैं नयन ये नीति ।। (निरुक्ति)

(८९) अवसर पर कीयो नहीं, यदि प्रयत्न हित-हेत।
फिर पछताये होत का, चिड़ियां चुग गई खेत ।।

(९०) चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी ।।

केवल छन्द

(९१) पाय के नर जन्म प्यारे, राम के गुण गाइये ।।

(९२) जो जग-हित पर प्राण, निछावर है कर पाता ।।

(९३) रघुवर-विशिख से सिन्धु-सम सब सैन्य इससे त्रस्त है,
यह पार्थ-नन्दन पार्थ से भी, धीर वीर प्रशस्त है ।।

(९४) अनित्य देह के लिये अनादि जीव क्या डरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ।।

(९५) द्विज वेद पढ़ैं सुविचार बढ़ैं बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को ।।

(९६) व्रज अवनि बता दो नाथ, कैसे बसेगी।
बिन बदन बिलोके आज कैसे बचूंगी ॥
(९७) लाई है चीर क्यों तू, हठ मत कर यों, मैं पियूंगी न आली ॥
(९८) तारे डूबे, तम टल गया, लालिमा व्योम छाई ॥
(९९) श्री वृन्दावन की मनोज्ञ मधुरा, श्यामायमाना मही ॥
(१००) दयासिन्धो बन्धो, भगवन कृपा मो पर करो ॥

समाप्त ।